शब्द :
अध्यात्म-पंथी का

–: चिंतक :–
आचार्य विशुद्धसागर मुनिराज

–: संपादक :–
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ

प्रस्तुत कृति : **शब्द : अध्यात्म पंथी का**

कृतिकार : **दिगम्बर जैन श्रमणाचार्य श्री विशुद्धसागर मुनिराज**

संकलन : श्रमण सुव्रतसागर मुनि

प्रस्तुति : इंजी. जिनेन्द्र कुमार जैन, पद्मनाभ नगर, भोपाल

आवृत्ति : प्रथम / 1100 प्रतियाँ / वर्ष 2016

अर्थ सहयोग :

मुद्रक : विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र,
गोविन्दपुरा, भोपाल (म.प्र.)
फोन : 0755-2601952, 9425005624

प्राक्कथन

अध्यात्म-विद्या के मर्मज्ञ आचार्य विशुद्धसागर जी की ये रचनाएँ एक अध्यात्म-साधक के हृदय से छूटी हुई व स्फुर्तिमय अभिव्यक्तियाँ हैं। कुछ रचनाएँ आराध्य-आराधक भाव की अभिव्यक्तियाँ हैं, तो कुछ अध्यात्म-साधना की साधक को होने वाली अनुभूतियों को अभिव्यक्त करती हैं और कुछ रचनाएँ समाज में हो रही विसंगतियों पर कटाक्ष करती हैं और साधक अध्यात्म-साधना कैसे सजग होकर करें जिससे उसके भीतर अध्यात्म की सरिता फूट पड़े, इस भाव को व्यक्त करती हैं। इन रचनाओं के रचनाकार श्री विशुद्धसागर जी स्वयं अध्यात्म की सरिता में गहरी डुबकियाँ लगाने वाले साधक हैं, वहीं कल्पनाओं के अद्‌भुत चितेरे भी। वे स्वयं साधक होकर भी, आज साधक कैसे पथ से भटक रहे हैं, उन पथ-भटके साधकों को सचेत कराने के लिए भी बड़े सजग हैं। भाव-प्रधान ये रचनाएँ कई जगह देखने में छोटी हैं, पर भाव की दृष्टि से बड़ी गंभीर हैं। कुछ रचनाएँ क्षणिकाएँ लगती हैं तो कुछ मुक्त छन्द की उन्मुक्त, पर संयत अभिव्यक्तियाँ भी। कुछ रचनाओं में धर्म-दर्शन का गूढ़ रहस्य है तो कुछ में आचार-परिशुद्धि का मार्ग भी। कुल-मिलाकर ये रचनाएँ पूरी तरह से एक अलग प्रकार का आस्वाद कराती हैं। आइये चलें, इन रचनाओं का आस्वाद लें और इनमें गहरी डुबकी लगायें ताकि उनके पवित्र भावों से हम भी पवित्र हो सकें।

दीपोत्सव-2014

प्रो. वृषभप्रसाद जैन
लखनऊ

जीवन को देखने की शक्ति दुर्लभ है,
इससे सबक लेना दुर्लभतर है और
उस सबक को नुकीले वाक्यों में घनीभूत
कर देना दुर्लभतम् है।

प्रस्तुति

अध्यात्म : सुखी जीवन जीने की शैली

अध्यात्म है भीतर / अन्दर जाने की विद्या।
अध्यात्म है दिव्य सूर्य, प्रकाश-पुंज।
अध्यात्म है सुखी जीवन जीने की शैली।
संपूर्ण दु:खों से मुक्त कराने वाली कोई कला है, तो उसका नाम है अध्यात्म
संसार में रहकर भी संसार से पृथक्त्व का ज्ञान
करानेवाला होता है अध्यात्म।
नाना विकल्पों-संकल्पों में जीने वाले प्राणी के लिये
अध्यात्म एक सुंदर उपवन है,
जहाँ बैठकर किया जा सकता है शांति का वेदन।
आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये करना होगा
अध्यात्म का पूर्ण अभ्यास।
संसार में व्याप्त महातम /अंधकार को दूर करने वाला
कोई सूर्य है तो वह है अध्यात्म-साधना।
निज आत्मा में व्याप्त है मोह का, अज्ञान का तिमिर
जिसके कारण जीव नहीं खोच पा रहा स्वनिधि को
और यहाँ-वहाँ भटक रहा है प्रकाश की खोज में।
अंधकार में प्रकाश की कल्पना हास्यास्पद नहीं है क्या?
बाह्य विषयों में आत्मज्योति प्रगट हो सकती है क्या?
ज्योति का भान कराता है अध्यात्म।
अध्यात्म का ज्ञान यदि वास्तविक होगा तो
उसके ऊपर विषमताओं के कितने ही पर्वत टूटें
वह आत्मबल के माध्यम से उन सभी को
सहज रूप से मानकर परिणमता है।
जो विभाव की महिमा को स्वीकार कर लेता है
अपने निज स्वरूप को नहीं समझा
वही अज्ञानीजीव व्यर्थ के विसंवादों में जीता है।
अध्यात्म यानी सुखी जीवन जीने की शैली को स्वीकार लें तो
प्राप्त कर सकेगा पूर्ण शांति।

- इंजी. जिनेन्द्र जैन
पद्मनाभ नगर, भोपाल

विचार सब उधार होते हैं। वे अपने तभी बनते हैं जब आचरण में आते हैं। अनुभव अपना होता है।विचार अनुभूति तक न पहुँचें तो वे उलझन पैदा करेंगे।

आपका आचरण अच्छा है तो आपके विचार अच्छे होंगे, पर आपके विचार अच्छे हैं तो जरूरी नहीं कि आपका आचरण अच्छा हो।

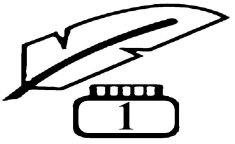

नमन
वीर
वर्द्धमान
सन्मति
अतिवीर औ
महावीर को....

नमन
गणधर गौतम
कुन्दकुन्द आचार्य औ
समन्तभद्र सूरि को...

नमन
वाग्वादिनि
ज्ञानमूर्ति औ
सरस्वति को...!

नमन
व्यवहार से
गणी-पद-प्रदाता
मोक्षमार्ग-उद्गाता
सूरि विरागसिन्धु को...

पर
नमन ये-सब
परमार्थ से
ध्रुव-ज्ञायक-स्वभावी
निज-आत्म को ही,
इसलिए तो
बार-बार कहता मन—
तू ध्यान कर
निज आत्म का ही,
औ'
नमन कर
निज-आत्म को ही।

❁

अर्हन्मुख
निवास
जिनका,

जो
जगत्-अविद्या की
हर्ता/हरण-कर्ता

इसीलिए तो...
सारा विश्व
इन्हें शतशः
नमन करता.....

अरे ओ वरदायिनी माँ भारती!
जो
मेरे अविद्या-मय हृदय में
विद्या-भाव
भरे
--ऐसा
वर दे,
ऐसा वर दे.....

शान्त स्वान्त चिद्रूपता को
प्राप्त करना यदि तुम्हें
फिर क्यों नहीं स्वीकारते
भिन्न तुम
निज में चुनना
पर-भाव से
निज-भाव के भिन्नत्व को?

पर-भाव से भिन्नत्व को
जाने बिना
निजानन्द/ निज आनन्द
होता कहाँ?
बताओ तो
पर-भाव से भिन्नत्व को
जाने बिना
निजानन्द होता कहाँ?

औ' निजानन्द के अनुभव बिना
परमात्म मिलता कहाँ... ?
तब और बोलो...
परमात्म को पाये बिना
संसार का भी अंत
आखिर होगा कहाँ... ?

कमल
खिलता-खिलता ही जाता
सूर्य
उगता
उगता ही जाता.....

जगने वाले जागते
जागते ही जाते
और
सूरज की उदय-बेला में
साक्षात्कार करते जाते
भोर के नव तेज का

पर सोने वाले तो सोते ही रहते
क्योंकि
भोर में भी वे देख रहे होते
रात को

क्योंकि
कमल खिलता है
कमल ही तो खिलेगा
न कि कुमुदिनी।

इसीलिए
प्रभु-वाणी कहती-
निज सूर्य के उदय पर
भव्य कमल खिलता है, खेलता है
औ देख ही नहीं पाता अभव्य
उदय को
क्योंकि उसे भोर में भी
दिख रही होती रात!

क्यों,
भोर में भोर ही देखोगे
या-फिर देखते रह जाओगे रात?
.....रात
बस रात.....
भोर में भी रात।

आकाश की नीरवता
सत्यार्थ समझाते हुए कहती-
मुझ-जैसा नीरव/नीरज होने का
करो प्रयास

यदि हो जाओगे
मुझ-जैसे नीरव/नीरज
तो हो जाओगे
तुम भी ऊँचे

और पा जाओगे ऐसी ऊँचाई
जिससे कि फिर
और-ऊँचे उठने का
कोई स्वप्न ही न बचेगा

अद्‌भुत ऊँचाई
ऐसी ऊँचाई
जिसके बाद न बचती और-ऊँचाई
और न रहती
नीचे गिरने की कोई संभावना

इसीलिए तो
दिव्यध्वनि की अनुगूँज कहती-
कर्म-रज का अभाव करो
खुले गगन की तरह
निर्लिप्त बनकर
स्व-स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर

और-फिर हो जाओ
अ-च्युत
आओ! चलें
अ-च्युत होने की डगर.....
बहुत न चल पाएँ, तो भी
कुछ कदम तो चलें
अ-च्युत होने की डगर.....।

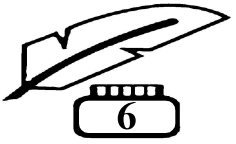

पर्ण/पत्ता
गिरा
तरुवर से,

सोचा उसने–
होगा अब कब
मिलन... ?

अगले पल पहुँचा बचपन में
और पूछने लगा
खुद से--
फिर पवन से भी--

वे दिन कहाँ ?
जब कोपल बन
तुम्हारे झोकों में
झूमता था मैं भी
तुम्हारे साथ

अरे !
अलग हुआ मैं
गगन से
ओह! अब तो
अवनि में
मिल जाऊँगा
क्योंकि
मिट्टी की शक्ति तो
महान् है न...
इसीलिए तो
ले लेती
बार-बार अपनी गोद में

हे वृक्षराज ! बताओ...
मेरी
तुमसे अलग होने की
मिट्टी में मिलने की कहानी
दोहरायी जाएगी आखिर
कब तक... ?
और कितनी बार..... ?

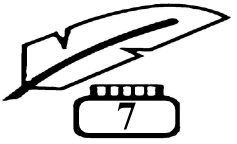

पर्यायें होती
परिणमनशील
क्योंकि
उगतीं
फिर नश जातीं
--है यही
इनका स्वभाव...

अज्ञ विमूढ़
पर्याय-विलय को
मानता
आत्म-विलय,

पर
विज्ञ
पर्याय-विलय को
कहता-
परिणमन
और
मानता इसे
बबूला/बुलबुला या नदी की तरंग
जो उठती और जल्दी ही
समा जाती अनंत में

इसीलिए
ओ ज्ञानी, ध्रुव ज्ञायक-स्वभावी।
मत जान
पर्याय को
पहचान
निज ध्रुव ज्ञायक-स्वभावी को.....

क्योंकि
पर्यायें होतीं परिणमनशील
उत्पन्न होना
नश जाना होता
स्वभाव इनका

स्वभाव पर
प्रश्न कहाँ?
क्योंकि स्वभाव होता स्वभाव
स्वभाव भी यदि बदलने लगा
तो-फिर
स्वभाव भी क्या रह पाएगा स्वभाव?
इसलिए मेरे मन!
प्रयास कर
स्वभाव को जानने का/पहचानने का

पर
विमूढ़ तो
पर्याय के विलय को
मानता आत्म-विलय
पर
विज्ञ तो
पर्याय के विलय को
कहता परिणमन;

पर्याय तो
नश जाएगी
बहुत जल्द ही
बिजली की कौंध की तरह

इसलिए मेरे मित्र!
मत उलझा रह
अध्रुव पर्याय के जानने में.....।

❁

अमल विमल
अखण्ड / ध्रुवधाम
चैतन्य-स्वभाव
है जो
भगवती आत्मा का,
वह है
अविराम
त्रिलोक-त्रिकाल में
अ-परिणाम-स्वभावी;

पर फिर-भी
निज-भाव में परिणमन
पर
पर-भाव में
परिणमन-शून्य
इसलिए
परिणामी-अपरिणामी

और इसीलिए तो अर्हत् ने कहा-
उभय-स्वभावी होता
भगवान्-आत्मा
परिणामी भी और अपरिणामी भी।

❁

अनित्य में
नित्यत्व को
क्या खोजना ?
नित्य
तो
नित्य है, मेरे मित्र !

पर
वह
कथंचित्
वक्तव्य है
और कथंचित्
अवक्तव्य भी।

इसीलिए जानो
स्व-पर चतुष्टय से
तत्त्व को..... ।

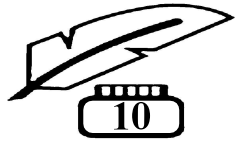

बड़ी अजब है दुनियाँ
शरण खोकर
अशरण में
शरण खोजती;

जैसे
मृग
खोजता
मरीचिका में
नीर

जो स्वयं की शरण नहीं
वह क्या देगा
अन्य को शरण ?

और इसीलिए कहा गया-
केवली-प्रणीत धर्म ही सच्चा शरण
केवलिपणत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि
केवलिपणत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि... ।

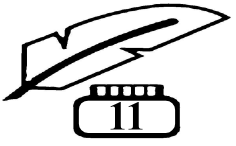

व्यवहार से
चार ही शरण हैं लोक में-
अरहन्त
सिद्ध
साधु
और केवली-प्रणीत धर्म;

पर
परमार्थ से
जिन-मार्ग में
निज,
ध्रुव अखण्ड
शुद्धात्म ही
शरणभूत

आत्मलोक में
नहीं अन्य कोई शरणभूत
न निश्चय में
न व्यवहार में.....।

❁

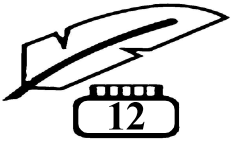

भोले प्राणी!
सिंह-मुख में
गया मृग
क्या बचा पाएगा
अपने प्राण ?

यम से
मृत्यु को
कोई छुड़ा पाएगा ?

कहते लोग-
अमर भी
मरण को
प्राप्त होते आए हैं
फिर
तू ही बता
कौन मरण से
बचा पाएगा ?

❁

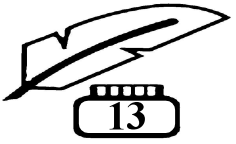

प्रचंड आदित्य
करता आलोकित
स्व-रश्मियों से
अवनि को औ
गगन को भी

खिलखिलाता
कमल-वन
प्रात:/मध्याह्न की
बेला में,

पर
नियति के सामने
सब बेबस/लाचार

क्योंकि
उग्र ज्योतिर्मय
अर्क भी तो
सन्ध्या में
चल देता
अस्ताचल को।

❁

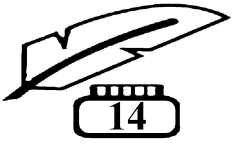

पारिणामिक भाव
परिणमन-स्वभाव
औदयिक भाव--
क्षायोपशमिक भाव

परिणमन स्वभाव होता
टंकोत्कीर्ण ज्ञायक-भाव
परमपारिणामिक
शुद्ध
ध्रुव अचल स्वभाव

चल हो जा स्थिर
ध्रुव स्वभाव पर
क्योंकि
वही तो तेरा
अचल
स्वभाव.....।

❁

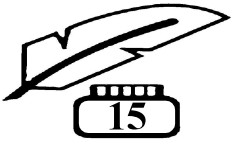

पृथक् को
स्वीकारो
पृथक्

पृथक् में
अ-पृथक्-पना कैसे?...

लवण भी
वर्षाकाल में
हो जाता
पानी-जैसा
और-फिर
वही
गरमी में बन जाता
लवण की डली -

पर
पर-भावों से
पृथक् ही रहता
ज्ञायक-भावी आत्मा
किसी भी मौसम में
भिन्न-भाव-रूप।

❁

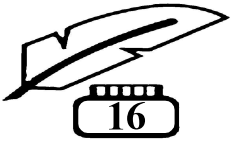

भिन्न में
अभिन्न की कल्पना
मिथ्यात्व है,
क्योंकि
भिन्न-अभिन्न में
अभिन्नत्व
होता नहीं...

द्रव्यों के
परस्पर मिश्रण में भी
त्यागते नहीं
भिन्नाभिन्न-भाव
स्व-स्वभाव
इसलिए तो
द्रव्य मिश्रण
होने पर भी
त्यागते नहीं
परस्पर
भिन्न भिन्नत्व भाव
स्व स्वभाव

वस्तु का स्वतंत्र धर्म तो
भिन्नत्वभाव ही

अहो! भोले प्राणी !
बताओ.....
फिर क्यों न मानते
भिन्न को और
भिन्नत्व को भी?

❁

समयसार को
समझता
वस्तु-स्वभाव
धर्म है,

क्योंकि
समय को समझे बिना,
समझ में आता नहीं
वस्तु-धर्म....

और
वस्तु-धर्म समझे बिना
होता नहीं
सत्यार्थ-बोध

और
सत्यार्थ-बोध के बिना
या-फिर बोधि बिना
समाधि कहाँ?

और-फिर
समाधि बिना
समाधि-फल : निर्वाण
कहाँ?

❁

भूतार्थ होते
भूतार्थ
और कदाचित्
अभूतार्थ भी भूतार्थ;

अभूतार्थ
भूतार्थ नहीं
तो-फिर
अभूतार्थ भी नहीं;

क्योंकि
अभूतार्थ से
बोध होता
भूतार्थ का;

इसीलिए
एक भूतार्थ
अन्य के लिए
अभूतार्थ,
एक भूतार्थ
और
एक अभूतार्थ
अन्य के लिए
भूतार्थ.....

क्या अद्‌भुत खेल
भूतार्थ-अभूतार्थ का
और पता नहीं
कब तक होता रहेगा यह?

अच्छा, तुम्हीं बताओ-
आखिर
यह कब तक होता रहेगा?

❁

तीनलोक में
अज्ञ जीव
खोज रहे
प्राण-रक्षा के बीज.....

औ भटक गए-
तंत्र मंत्र औषधि में.....

सच,
पर्याय का जीवन
पर्याय के साथ बँधी
आयुकर्म की सत्ता तक

जब क्षीण हुआ
पर्याय का आयुकर्म
तो-फिर काम न आए
तंत्र... मंत्र... औषधि....
या-फिर कुछ-और भी...
बताओ- काम का क्या?
आयुकर्म
या-फिर
तंत्र...
मंत्र...
औषधि....
या-फिर कुछ-और।

जो करते थे आराम
स्वर्ण-कुटियों
और प्रासादों में;

रक्षा में खड़े रहते थे
सैकड़ों /सहस्रों अनुचर जिनकी,

अरे!
ऐसा भूपति भी
मिल गया मिट्टी में

आग के भभकारे
और
यमराज-बली के सामने
क्या चल पाती
किसी भी बलवान की?

इसलिए रे ज्ञानी !
क्यों व्यर्थ कर रहा श्रम
रक्षा के लिए
अपनी पर्याय की...?

❁

उपदेश-
आदेश-
निर्देश
कहने या दिखने में
सरल होते
सरल लगते

कहने-सुननेवाले भी
बहुत मिलते....

पर
इन पर
ठीक तरह चलनेवाले
हजारों
लाखों....करोड़ों.... की भीड़ में
होते
विरले ही...!

भावों की विशुद्धि
बना देती है
भगवान्
और
भावों की अशुद्धि
भटकाती है
भव-भव।

हे ज्ञानी !
भटकन से
बचना है तो
कर....
भाव-विशुद्धि
और लग जा उसकी अभिवृद्धि में
या-फिर लगा रहेगा
हमेशा की तरह अब भी....
अशुद्धि में...?

ए मार्गी!
उस मार्ग की
स्वच्छता पर
ध्यान रख.....
जिस पर
चल निकला है.....

मार्ग में मिलेंगे
रागी भी, अनुरागी भी
पर
राग में लिपटा नहीं...
कि दल-दल में फँसा नहीं

समभाव रख
राह पकड़ अपने लक्ष्य की.....

क्योंकि
राग में रम गया
वासना में फँस गया
तो....
भटक जाएगा
मार्ग से
पथ से
मंजिल से
लक्ष्य से
और
मोक्ष से भी....।

आस्था का दीप
जलाओ....
क्योंकि
मिथ्यात्व का अँधियारा
गहरा है.....

कषाय की
बयार
चल रही सब ओर.....
बुझने न पाये....
आत्म-ज्योति का दीप,

इसलिए
आस्था के ज्योतिर्मय दीप से
निज वस्तु को देख....
क्योंकि
तेरे भीतर की वस्तु तो
अनर्घ्य है न.....?
सुन उसकी आवाज
देख उसकी अनंत चमचमाहट...।

हे
राही !
चलता चल.....

पथ
लम्बा
काँटों-भरा
और
पथरीला,

सम्यग्-दर्शन
ज्ञान
चारित्र
तेरे संग,
अटल
चलता चल.....
जब तक
न हो जाए
अचल...
चल.....
राही!
चलता चल....।

❁

हे मुमुक्षु!
पन्थों में आओ मत....
स्वीकार करो
पथ को, राजपथ को.....

क्योंकि
पन्थों में
पथ होता ही नहीं,
बल्कि वहाँ होती
पंथी की मनमानी
और जब पथ नहीं
तो स्व-पथ का राजपथ
होगा क्या वहाँ?

वहाँ तो
राग है
द्वेष है
विकार है
अहंकार है....;

न व्यवहार नय
न निश्चय नय

एकाकी-पथ तो
उभय-नय वाला ही
बल्कि वह तो
उभय-नय से
पार ले जाने वाला ही;

दृष्टि
रख-
रत्नत्रय पथ के रथ पर ही
इसीलिए तो
अरहंतों/आचार्यों की परंपरा
ने कहा-
रत्नत्रय पथ ही
सत्यार्थ पथ...।

❁

पुण्य,
भोग से नहीं
विसर्जन से होते
वर्द्धमान्....;

भोग
पुण्यक्षय के
सुगम साधन;

चाहते यदि
आत्मदीप का
अनुरक्षण
तो
भोगों से
करो
निज का रक्षण;

भोग
दिखते सुन्दर
लगते सुन्दर
पर कराते
दुर्गति से
मिलन...;

इसीलिए
भोग से छूटे नहीं
कि मुक्ति-सीढ़ी चढ़े नहीं.....।

❁

चिन्तन है हेतु
आत्मविकास का...
जैसी होती
चिन्तन-धारा
वैसी होती
आत्म-गति/आत्म-धारा

चिन्तन
यदि स्वस्थ
तो स्वस्थ
तन भी, मन भी
और
तनी भी/मनी भी

चिन्तन
यदि अस्वस्थ
तो विनाश का
आतम-दानव का जनम

पर
चिंतन
यदि पावन
तो मानव बनता
महामानव

क्यों, बनोगे
महामानव या दानव ?

❁

धर्म की प्राप्ति
करनी नहीं पड़ती,
धर्म तो होता है;

धार्मिकता तो
नेत्रों का विषय,
पर आतम का धर्म तो
सहज स्वभाव;

इसीलिए
जो स्वभाव
वही तो
धर्म;

इसीलिए
धार्मिक कहलाने से
अच्छा है
अपने धर्म में लीन रहना...
बताओ...
कब करोगे
कर्म में-धर्म में लीन रहने का जतन
बताओ जरा.... ?

❁

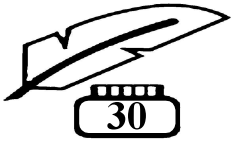

मरकर भी
अमर होते
अमर हो जाते कुछ लोग;

जीते हुए भी
मरे-से
होते हैं कुछ लोग,

विषयों से रहे जो दूर,
अमर हुए वे लोग

और विषयों में रहे जो रत,
रमते रहे जो
वे
जीते भी मरे-से.....।

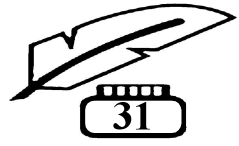

सबके
दिन
एक-से
नहीं होते
नहीं रहते;

डाल पर
मुस्कराती कली
एक दिन
चरणों में
चढ़ जाती;

गगन में
झूमने वाले भी
एक दिन
अग्नि में
जल जाते.....अरे!

स्वभाव
होता है
प्राकृतिक
सहज-
सत्य,

स्वभाव में
पर -भाव का
मिश्रण नहीं;

पर-भाव का
मिश्रण जहाँ,
वहाँ स्वभाव कहाँ ?
वह तो
विभाव है,

विभाव है
सोपाधिक
और
स्वभाव है
निरुपाधिक।

❁

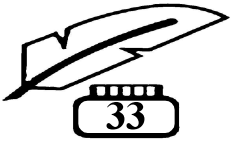

विवेक
जीवन को
धन्य बनाता,
इसीलिए
पूजा जाता
सब जगह
विवेक;

हर्ष और आनन्द
होते इसके अनुचर;

अविवेकी को तो
मिलते
दु:ख
अशान्ति
लोक-निन्दा.....।

❁

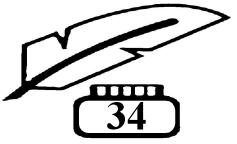

मेघ
ढकता/ढक सकता है
सूर्य को
पर नहीं कर सकता
उसका अभाव
या उसको गायब....;

इसीलिए तो
अभाव नहीं होता
कभी भी
आत्म-आदित्य का

गायब होता है
कर्मों का आवरण।

कर्म-मेघों के
विघटित होते ही
प्रकाशित हो जाता
केवल ज्ञान
शुद्धात्म सूर्य...

फिर ऐसा उजियारा
जो कभी मिटता नहीं.....।

❁

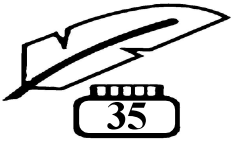

जन्म-जरा-मरण
रोग-भय से अतिक्रान्त
संसार में
ध्रुव ज्ञायक आत्मा का
अन्य कोई
शरण नहीं;

परमार्थ से
कर्म-बन्ध से विमुक्त

निज विभुत्व शक्तिमान्
आत्मा ही
आत्मा की शरण

सम्यग्दर्शन
सम्यग्ज्ञान
सम्यक्चारित्र ही
मोक्षमार्ग

आत्मा
तीनों का
अधिकरण,

इसीलिए
आत्मा ही सत्यार्थभूत
आत्मा की शरण।

❁

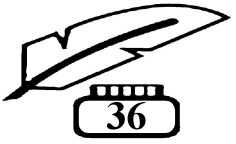

एकत्व-विभक्त
सत्यार्थ-स्वरूप
भगवान्-आत्मा का

मूढ़
भूल रहा
भव-कूल में डूब रहा
किनारा दिखता नहीं
मोह-पट्टी बाँध
नयनों में घूम रहा

सत्यार्थ-मार्ग पाने के लिए
सुन
सद्गुरु के बोल
अब-तो कानों की/आँखों की पट्टी
खोल।

संयोग
स्वभाव नहीं....
स्वभाव में संयोग नहीं....

स्वभाव: समवाय है
समवाय तो अयुत-सिद्ध भाव
संयोग में
स्वभाव की मान्यता
अज्ञान-भाव

अज्ञान है मिथ्यात्व-भाव
मिथ्यात्व-भाव है बन्ध-भाव और
बन्ध-भाव का अभाव करना ही
मोक्षमार्गी का स्वभाव।

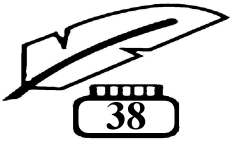

वस्तु-स्वतंत्रता
त्रैकालिक
सिद्धान्त है;

मोह से भ्रमित-जीव
निज-स्वतंत्रता खोकर
परतंत्र हो रहा....

पर्यायों में रमने से
निज-स्वभाव का
भान नहीं;

अरे !
कण-कण स्वाधीन
फिर-भी हो रहा
अल्प-धी
पराधीन।

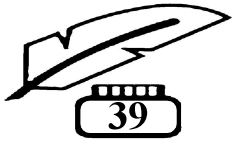

अहो आश्चर्य !
'निज-स्वतंत्रता' को खोकर
'पर का कर्ता' बन रहा
और बना रहा
पर को
निज का कर्ता;

हे मूढ़ !
जब
अणु-अणु स्वतंत्र,
तब तू
पर-तंत्र-ता में
क्यों खो रहा ?

हंसात्मा ही
शुभाशुभ कर्मों का कर्ता,
वही
कर्म-फल का भोक्ता

अन्य का
न कर्ता
न भोक्ता,

'पर' का कर्ता हो गया,
तो
'स्व' का सब पुरुषार्थ
क्या व्यर्थ खो गया ?

❁

एक ध्रुव अखण्ड चैतन्य
आनन्दकन्द
ममत्व-शून्य
ज्ञान-दर्शन-स्वभावी
शुद्धात्मा
परम उपादेय
-ऐसा कहता चिन्तन
चित्त-निरोधक, परम-संयमी
तपोधन, निर्ग्रन्थ, योगीश्वर का

❁

अन्य तो अन्य है
अनन्य नहीं,

अज्ञ
अन्य में अनन्य का सम्बन्ध कर
अनन्य से दूर हो रहा।

कैसा अजब यह संसार ?
जिस ज्ञान से अन्य में
अनन्य-भाव कर रहा
उस ज्ञान से ही
अनन्य ज्ञान-धर्मी
आत्मा को भूल रहा,
इसी कारण
मूढ़
और-मूढ़ बन रहा.....।

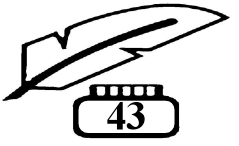

हे विशुद्धात्मन् !
तू किसे समझाना चाहता है ?
उसे,
जो/स्वयंभू समझदार है
या/उसे,
जो कुछ भी
समझना नहीं चाहता
सुनने को भी तैयार नहीं

हे नासमझ !
'पर' को छोड़
निज को समझ

निज को समझ जाएगा
आत्मा में रम जाएगा
तो परमात्मा बन जायेगा.....।

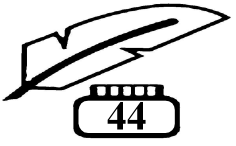

क्रोध है
ज्वाला/अंगारा
ज्वलनशील स्वभाव उसका

अग्नि
जलाती घास को, पात को
पर नहीं जला पाती
आत्मा को,

क्रोध
जलाता है आत्मा को
नहीं बुझती ज्वाला जिसकी
जल/अमृत/क्षीर से
यहाँ तक कि
आँखों के नीर से भी,
यह तो ऐसी महा-ज्वाला
नहीं बच पाते जिसके ताप से
नर/अमर/मुनिवर

बचते हैं वे,
जो होते हैं क्षमाधर;
बचते हैं वे,
जो होते हैं क्षमाधर.....।

अहंकार : प्रबल
इसके पीछे सब सबल,
इतना ही नहीं
यह तो बना डालता
सबल को भी अबल

अपने बल पर
न जाने कितनों को कर दिया निर्बल
नहीं दिखते
मात-तात, जन-परिजन,
गुरुजन-स्वजन
तेरी प्रबलता से
'लंकेश' चला गया पर-लोक
नहीं सुनना चाहता हित की बात
भुला देता सब आगम-पुराण
इसके भावों से होता है
मानवता का संहार
अरे! कैसा जगत्-शत्रु है यह
'अहंकार'?

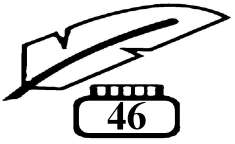

माया
भुला देती
सत्य को,
जन्म देती
असत्य को;

मन में विचारे कुछ-और
वचन में उचारे कुछ-और
शरीर से चेष्टा करे कुछ-और
यही तो है माया।
तेरा रूप, स्वरूप,
कृपा से तेरी मिलता तिर्यंच रूप,
यदि कर लिया आयु-बंध मनुष्य का
तो-फिर पर्याय मिलती
नर के स्थान पर नारी की
कहीं धूप, कहीं छाया
ऐसी है तेरी 'माया'।

इच्छाएँ होतीं बड़ी अजब
जब ये आतीं
तो खो जाती अपनी शुचिता
नहीं रह जाता
मानव-मन भी मानव-मन
भूल जाता मानव
मानवता की पहिचान
बस, रह जाती केवल
धन को जग को पाने की
महा-लालसा
इसीलिए तो बनते
इच्छाओं के पीछे चलने वाले
नरक-वासी
और इच्छाओं पर राज करने वाले
या इच्छाओं को समूल हरने वाले
बनते
शिवपुर के वासी।

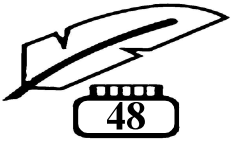

क्या हेय ? क्या उपादेय ?
क्या कर्तव्य ? क्या अकर्तव्य ?
न धर्म, न देह
न व्रत, न उपवास
न दान, न तप

किसी का भी ध्यान नहीं
मान और अपमान का भी भान नहीं
पाप का बाप 'लोभ', महापाप
जो देता जनम-जनम संताप।

भावना भव का नाश करा देती है,
भावना ही भवों को बढ़ा देती है,
एक भाव है भव के बंध का कारण
एक भाव बनता
भव से मुक्ति का कारण।

कषाय और मिथ्यात्व
बढ़ाते भवों को
संयम, व्रत, शील
नशाते भव को।

ज्ञानी !
तुम्हीं बताओ
हम बढ़ रहे भव-नाश की ओर ?
या-फिर भव-भव-बंधन
बाँधने की ओर ?

किये अशुभ भावों से पंच परावर्तन
नहीं एक में भी सुख-शांति,
चाहते हो शांति तो
आज से ही तू कर सत्कर्म
नहीं-तो मात्र कथनी होती रहेगी
प्रज्ञा चलती रहेगी।

न चल उस राह
जिससे आना और जाना लगा रहता
फिर-भी,
चल या चलने का प्रयत्न कर उस राह
जो पहुँचाए ऐसी मंजिल
जहाँ से न होता आना या जाना कभी
बोल राही, बोल
चलेगा उस राह..... ?

कुपथ-गामियों ने
निज भरण-पोषण के लिए
ख्यापित किया दान के नाम पर
कु-दानों को ।

पहले फँसाया
....फिर जकड़ा
अंततः रमा लिया
भोले जीवों को
अपने प्रपंच में ।

परिणामः
धर्ममार्ग तिरोहित होने लगा
मिथ्यामार्ग फलने-फूलने लगा
और
आदमी दूर होने लगा
तीर्थंकरों की देशना से
स्वयं अपने-आप से
कुपथ-कुदान कुलाँचें भरने लगा
अरे! देखो- क्या हो गया?
अरे! देखो- क्या हो गया?

पर-भावों से भिन्नत्व-भाव को
पहिचान लेना
पर-भावों से
निज-स्वभाव को
पृथक् कर लेना

यही तो है सत्यार्थ
और यही परमार्थभूत त्याग-धर्म भी
इसीलिए जिनवाणी कहती-
करो त्याग के राग का भी त्याग।
धन्य हैं वे योगी!
जो करते
मन में पलते त्याग-के-
भाव का भी त्याग
और इसीलिए वे करते
परानुभूति से पृथक् निज को
इतना ही नहीं,
हो लेते स्वानुभूति में लवलीन
तब कहलाते
परम त्यागी/वीतराग
और तभी हो जाता
उत्तमत्याग मूर्तिमान्
चलो, नमन करें उत्तमत्याग को/
त्याग की मूर्ति को.....।

अखण्ड ज्ञायकभाव में लीन होना
परभावों से निज भाव को भिन्न रखना ही है परम त्याग
जब परमार्थ दृष्टि से पर-भाव तेरे हैं ही नहीं
तो फिर बता मेरे मीत!.....फिर, त्याग किसका?
स्व-द्रव्य का, द्रव्य से स्वत्व का, द्रव्य से उसके गुणों का
त्याग होता है क्या कभी या हो सकता है क्या कभी?
भो प्रज्ञ! यदि करना चाहता है तो कर त्याग
विषय-कषायों का/ निज के विकारी-भावों का
अर्जित का कर दान
पाप-पंक धोने के लिए,
पर ओ भोले!
दान देने के लिए
कुछ-और अर्जित मत कर
जो दान के लिए अर्जित करता
वह भोला
स्नान के पहले तन पर कीचड़ धरता
पर, लोग अब ऐसा ही करते
ओ भोले प्राणी! मत भर तू मन-तन पर
कीचड़-मैला.....
पंक का गैला....
मत भर तू मन-तन पर।

ओ पुण्य!
तू सब अर्थवानों से बड़ा अर्थी अर्थात् अर्थवान्,
बाकी सब हैं अनर्थकारी

धन, वनिता, पुत्र, मित्र, सब
पुण्य के ही कारण हैं अर्थी/ अर्थवान्,
पर.....
उनके राग में तू
हो जाता अनर्थकारी

आँख खुली है जब-तक
तब-तक दिखते सभी आत्मीय
आँख बंद हुई तो
फुर्र हो जाते आत्मीय भी
कुछ तो नहीं जाते मरघट पनघट तक भी

जब-तक पुण्य तब-तक
लोक में भी सब मँडराते आस-पास
पुण्य यदि चुक गया, तो
चुक जाता सब-कुछ
अरे, बड़ा अजब-गजब है
पुण्य का खेला।

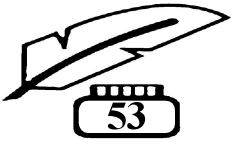

आकिंचन्य स्वरूप है
निज ध्रुव आत्मा का,
परपदार्थ
न भूत में थे
न वर्तमान में हैं
और न होंगे भविष्य में इसके।

पौद्गलिक भाव होते अत्यन्त भिन्न
जो-कुछ दिखता चहुँ-ओर,
वह होता अत्यन्त भिन्न
भगवती-आत्मा से।

ज्ञान-दर्शन-स्वभावी रहता
पर-भावों से सर्वथा भिन्न ।

किसी भी काल में
पर-भाव नहीं बन सकते
आत्मा के स्वभाव,
इसीलिए आत्मा आत्म-गुण रूप ही
न कुछ-और बन सकते इसके
और न बन सकता यह कुछ-और
इसीलिए तो ठहरा यह
निपट अकिंचन ही.....।

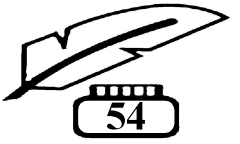

आदर्श जीवन होता उसी का
जिसके पास होता आकिंचन्य धर्म
या जो पहचानता
अपने अकिंचन-भाव को,
क्योंकि आकिंचन्य धर्म ही है
भावों की विशुद्धि का सहज-साधन
और यही रखता आत्मा को सतत
उसके ही अखण्ड ज्ञायकभाव में
और इसीलिए तो यह सिखाता
आत्मस्वभाव होता परभावों से भिन्न
आत्मस्वभाव: परभाव-भिन्न

और यही स्थापित करता
आत्मा को
उसके ध्रुव धाम में.....।

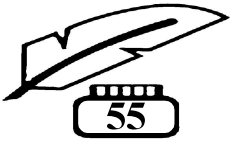

हूँ मैं
एक अखण्ड ध्रुव चिन्मय चैतन्य-धाम
पर-भावों को नहीं मिलता इसमें लेश भी प्रवेश
होता यहाँ उनका पूर्ण-विराम,
इसीलिए तो शास्त्र कहते
निज स्वभाव ही मेरा निज-स्थान।
गुणस्थान
मार्गणा
जन्म-स्थान
जीवन-काल
नहीं मेरे ध्रुव स्थान।

इसीलिए तो मैं जब सजग होता
और उद्‌भासित हो जाता मेरा स्वभाव
तो न कुछ-और मुझे मेरा लगता
और न मैं कुछ-और का होता
और तब मुझे प्राप्त कराता
परम आकिंचन्य धर्म
मेरा परमपारिणामिक ज्ञायकभाव
और तभी मिल जाता मुझे मेरा लक्ष्य...
परम स्थान....।

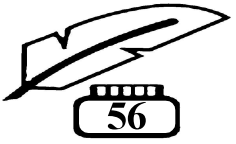

स्पर्श, रस, गंध औ वर्ण
ये-सब हैं पुद्गल के धर्म
नहीं ये चेतन के धर्म
पर
क्या विडम्बना मोहराज की कि-
पुद्गल के धर्म
मुझे लगते मेरे धर्म
इसीलिए तो मुझे अच्छा लगता-
किसी का छूना
और इसीलिए चाहना रखते
उसे जीवन-भर छूने की, छूते रहने की
इसीलिए तो मुझे अच्छा लगता-
किसी का चखना और खाना
इसीलिए चाहना रखते उसे जी-भर खाने की
इसीलिए तो मुझे अच्छा लगता-
किसी गंध का सूँघना
इसीलिए चाहते उसे जीवन-भर सूँघते रहना
इसीलिए तो मुझे अच्छा लगता-
किसी का या किसी को देखना
इसीलिए चाहता कि वह देखती रहे
या मैं उसे देखता रहूँ
जीवन-भर.....।

धन के राग में
मैंने
क्या अनर्थ नहीं किये
अहो अज्ञ! क्या दशा तेरे भावों की
भवातीत दशा का
तनिक भी
भान ही नहीं मुझे
स्वानुभव के आनंद का
ज्ञान ही नहीं मुझे
विषयों की लिप्सा में
इतना डूब गया
निज भगवान्-आत्मा का
ध्यान ही नहीं
मुझे.....।

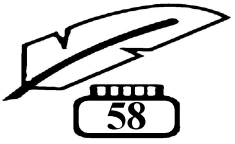

अर्थ है अनर्थ का सुगम साधन
अनर्थ से स्व-रक्षा करना है तो.....
अर्थ से
राग को हटाओ
वैराग्य-भाव को जगाओ
तत्त्व-बोध और
वैराग्य-शक्ति ही तो
सहज साधन
निज वैभव के प्रकटीकरण के
औ सिद्धि के साधन भी।
जीव के निर्वाण के.....
आसन-असन
बसन-बासन और वासना
..... ये सभी हैं बाहरी वस्तुएँ
यदि इनमें फँसे रहे
तो भगवती आत्मा के रिपुओं में धँसे रहे
निजानंद आनंदकंद परमपारिणामिक स्वभाव की प्राप्ति के
नहीं इनमें से कोई भी साधन
केवल शीतल समरसी-भाव ही
निर्वाण-सिद्धि का साधन
और उसी से मिलता निज का अकिंचन-धर्म भी....।

ध्रुव चैतन्य
स्वयं चेतना है
पर-संबंधों से भिन्न है अखण्ड
परमार्थ से और पर से शुद्ध
दर्शन-ज्ञान उसके निज स्वभाव

निज स्वभाव से भिन्न
नहीं होता उसका कोई भाव
अन्य कोई पर-द्रव्य
परमाणु-मात्र भी नहीं हैं उसके
-ऐसे विचारता आकिंचन्य-स्वभावी आत्मा
आकिंचन्य भाव : ध्रुव स्वभाव
आकिंचन्य स्वभाव ही
परम-धर्म आत्मा का।

जब ध्रुव ज्ञाता-मात्र अवशेष रहता
देहादि पर-भावों से जब हो लेता पूरी तरह विलग
परमाणु-प्रमाण भी जहाँ नहीं रहता राग
वहीं पूरा प्रकट होता आकिंचन्य का फल
और जाग्रत हो जाता ब्रह्म-भाव
आत्मा का ध्रुव-स्वभाव।

मन : एक आदर्श-दर्पण
जैसा होवे बिम्ब
झलके वैसा ही प्रतिबिम्ब
और होती बस वैसी ही वस्तु

जल की धार सदा नीचे की तरफ बहती है
मन की धारा भी
जहाँ अनुकूलता दिखती है
उसके पीछे नीचे
सहज दौड़ती चली जाती है।
ऊपर लेकर जाना है यदि नीर तो
पुरुषार्थ करना पड़ता है,
वैसे ही मन ऊपर ले जाने को
सम्यक् पुरुषार्थ आवश्यक है।

यह ठीक वैसे ही है जैसे
चेहरा और-अच्छा लगने लगे दर्पण में
इसके लिए चेहरे को सँवारने का
पुरुषार्थ करना पड़ता है
क्यों, चेहरे को सँवारने का पुरुषार्थ करोगे न..... ?

हे हंसात्मन्!
तेरा चिंतन चिरंतन है,
चिंतन को विराम कहाँ?
वह तो चल रहा है
अविराम / बेलगाम

चिंतन वही
जिसमें न हो चिन्ता
न हो गिरने का भय
और न खोने की आशंका
इसलिए वही हो जाता सम्यक् चिन्तन भी
जिससे होता चित्त निर्मल, चारित्र पवित्र,
और मन-वचन-काय विशुद्ध;
क्यों,
धोना चाहते हो चित्त औ मन-वचन-काय को?.....

खिलती हैं कलियाँ
हर लेती हैं मन-मदन,
सखी बनकर करतीं
दिग्-दिगन्त शोभायमान
बिखेरती हैं पराग
फँसते हैं भ्रमर
ऐसा है राग।
ढल रही शाम,
निशा
नहीं ले रही विराम;

खिलती कली मुरझाने लगी,
अहो ! आश्चर्य
नहीं अब दिखता कोई फूल वहीं,
स्थान वही
पर कली भी नहीं और भ्रमर भी नहीं
और नहीं वह अंगड़ाई/तरुणाई
देखो, इस जग में
खिलते के सब साथी
मुरझाते के विरल या-फिर कोई नहीं

ढल रही शाम,
निशा
नहीं ले रही विराम.....।

❁

कर मनन-चिंतन
मन की निर्मलता के लिए
आत्मज्ञान की वृद्धि के लिए
तत्त्वनिर्णय
आत्मबोध के लिए
चारित्रशुद्धि के लिए
धर्मध्यान में रत रहने के लिए।

मनन ही
मानवता की पहिचान
मनन ही
मन वश करने का आयाम

जो करते हैं मनन,
वही मनु की सन्तान
यही तो मनुष्यता की पहिचान...।

❁

मन!
तेरा वेग कितना है तीव्र
एक क्षण पाताल में
दूसरे क्षण आकाश में
एक पल में यात्रा कर लेता तू
अखिल विश्व की
इतनी गति तो नहीं होती
इन्द्र के विमान की भी।

तूने अपनी निर्मलता से
कितनों को संत बना डाला
और तेरी चंचलता ने
कितनों को अ-संत,
पता नहीं तू कब किससे क्या विचार करा डाले
कब कहाँ किसके शील को डुला डाले
किसके घर-बाग को खाक बना डाले

रे मन !
जिस दिन होगा तू वश में
घृत के दीप जलें जग में.....।

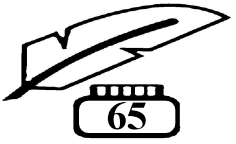

अहो हंसात्मन् !
तू कितना निर्मल
अमल, अनुपम, चिद्रूप है,
स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-संस्थान-संहनन से परे है
ज्ञान-दर्शन-चारित्र तेरा धर्म है
ज्ञाता-दृष्टा तेरा स्वभाव है
परद्रव्य तेरा स्पर्श
किंचित् भी नहीं कर पाता
तू कभी,
पर-पर्याय पर-गुण, पर-द्रव्य को
प्राप्त न था, न है, न होगा;
तेरी चैतन्यशक्ति अनन्त है,
तू ही तो है आचार्य, उपाध्याय, साधु सन्त,
तेरी भगवत्ता में ही सर्वज्ञ सिद्ध अरहंत
पर हम इससे अनजान
क्योंकि वे हैं अभी अप्रकट.....।

अरहंत-भक्ति बना देती भक्त को भगवान्
भगवद्भक्ति नशा देती पूर्व-संचित कर्म
प्रभु-भक्ति छुड़ा देती भव-बंध
यही भक्ति मिटा देती भव-भव के क्लेश
अहो चेतन! कर भक्ति चैतन्य धर्म के लिए
ज्ञान-घन परमानंद ज्ञायक-स्वरूपी
परमात्म पद की प्राप्ति के लिए.....।

जन्म सत्य
मरण सत्य
शिशु से लेकर वृद्धावस्था तक सत्य,
कुछ भी नहीं असत्य,
पर कुछ भी नहीं सत्य भी,
क्योंकि कुछ देर बाद न दिखता बचपन
न बुढ़ापा।

संयोग में हर्ष नहीं
वियोग में विषाद नहीं,
-यही स्वीकारना सत्य

ज्ञानी रहता
जग का ज्ञाता-दृष्टा बनकर
क्योंकि तटस्थ रहकर ही तो
सत्य को ज्ञात कर पाता है
जब बनेगा भेदविज्ञानी
तब जान पायेगा
जीवन का सत्य
इसलिए सत्य तो बस सत्य
इसको जानने का, जीवन में उतारने का
करते रहो यत्न.....बस यत्न.....।

धर्म :
वस्तु का स्वभाव है,
निस्पृही संतों का मार्ग है
ढोंगी पाखण्डी आडम्बरियों का नहीं

धर्म पर पुस्तक लिखना नहीं
धर्म की पुस्तक बनकर जीना है धर्म-मार्ग
वाद नहीं, विवाद नहीं
केवल स्व का स्व से सम्वाद,
श्रद्धा-विश्वास और आस्था से ही धर्ममार्ग
बनता, पलता और-फिर आगे चलता

कर्तव्य का पालन कर तू कर्तव्य मानकर
कर्तव्य कर्म है, धर्म नहीं;
जो आकुलता से निराकुलता में ले जाता,
वही है धर्म-तत्त्व
और तत्त्व है वस्तु का स्वभाव,
आत्म-तत्त्व का स्वभाव है वीतराग-भाव
यही सत्य, बाकी सब असत्य,
यही कर्तव्य, बाकी सब अ-कर्तव्य।

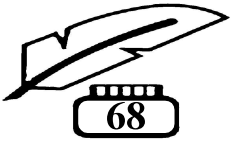

कर्मों की गति
निराली,
यही सबसे बलशाली
इसकी कु-दृष्टि से हाहाकार मचा रहे लाखों
इसकी अनुकम्पा से मुस्करा रहे लाखों
कर्मों की गति से करोड़पति रोडपति
और रोडपति करोड़पति
इसने सीता सती, सोम को नहीं छोड़ा,
तीर्थंकर ऋषभदेव को छः माह तक घुमाया,
इसने ही सेठ सुदर्शन को सूली पर चढ़वाया,
श्रीपाल के तन को कोढ़ से गलाया;

हे ज्ञानी ! सद्कर्म करता जो
सुख-शांति पा जाता वो।

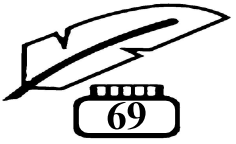

हे मन !
एक पल में तू पहुँचता है
सात-समुन्दर पार
दूसरे ही क्षण
इह-लोक से पर-लोक तक
कर लेता तू विहार
कभी करता है अक्ष पर लक्ष्य
तो कभी आत्मा का आत्मा से प्रत्यक्ष,
पर रे मन ! मत भूल कि-
आत्मदेव का मन ही तेरा लक्ष्य।

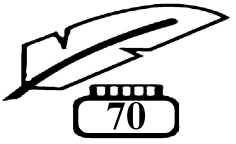

भाषा
करा देती है,
व्यक्ति के व्यक्तित्व का बोध
भाषा
करा देती है,
व्यक्ति के भावों का ज्ञान
भाषा ही तो है
अंदर का आइना
जो दिखा देता है
अन्त:करण के प्रतिबिम्ब को।

मौन :
मौन है
मूकपन नहीं
मूक के पास भाषा नहीं
मौनी के पास भाषा तो
पर उसपर उसका पूरा नियंत्रण
इसीलिए तो
मौन की भाषा होती है अनुपम
मौन में मुख से नहीं
हृदय से होती है बात
मौनी ही पहिचानता मौन की भाषा
इसी से होता आत्म-शक्ति का संचय
साधक के अंत:करण की शुद्धि का आलम्बन है मौन
जो करता है निज की बात निज से
वही है मौनी और वही सच्चा साधक.....।

अधरों की लालिमा
अंदर का लालित्य नहीं,
धर्म का भेष -
धर्म की भावना नहीं,
कर लिया उपवास
पर निज के पास तनिक भी वास नहीं,
धर लिये आगे चरण
पर करण में निर्मलता नहीं,
पढ़ लिए शास्त्र
पर शास्ता पर आस्था नहीं,
अध्यात्मवेत्ता बन गए
पर आत्मज्ञान का भान नहीं,
सब प्राप्त कर लिया
किन्तु प्राप्त-तुल्य कुछ भी नहीं ।

ललित-भूमि पर ललित जिन-भवन
जिस पर ललित शिखर,
आकाश को चूमते शिखरों पर
ललित स्वर्णकलश,
ललित कलशों पर
ललित केशरिया ध्वज,
ललित ध्वजों से
फर-फर ललित आवाज
ललित जिनभवनों में
ललित स्वर से हो रही ललित भक्ति
और ललित भक्ति से नाच उठे मन-मयूर
हे मन ! ललित जिनबिम्बों को देख
और कम-से-कम थोड़ा तो कर
ललित आत्म-बिम्ब का ध्यान .....।

गगन है अम्बर,
भूमि है शय्या
भुज है तकिया,
विश्व है परिजन,
पुरजन है प्राणिमात्र
करुणा-दया-अहिंसा है तात,
सत्य है मात, अस्तेय है भैया,
शील है भगिनी,
अपरिग्रह है सखा जिनके
वही है
धरती के देवता
निर्ग्रन्थ योगी।

❁

उदित हुआ आदित्य गगन में
हुए प्रकाशित धरती-अम्बर
खिल उठे कमल सरोवर में
चहक उठे पक्षी अपने-अपने घोसलों में
लिपट गये बछड़े जननी के आँचल में
योगी-सन्त-महन्त लग गये प्रभु-भजन में
यही थी वह अरुण-बेला
जिसमें दिखता सभी अलबेला।
हुई शाम
सूर्य की कांति मुरझा गई,
डालियों से कलियाँ गिर गईं
फूल मुरझा गए
कमल मुद गए
गायें लौट गईं चरागाहों से
शाम हो गई/अवसान हो गया
पता नहीं
जीवन कब आया
और चला गया
पता नहीं
जीवन कब आया और चला गया।

❁

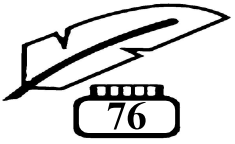

अहो! आश्चर्य!
काल कैसा काला है
उसके सामने सभी के चेहरे फीके हैं
कभी होते भरे-भरे,
तो कभी होते ढीले-ढीले
और कभी रीते-रीते
बहुत कम क्षणों की चमक-दमक
फिर होते फीके-फीके
जो करते थे गज-असवारी
आज वे ही पैदल चलते/फिरते और फिसलते हैं,
चिलकते थे भाल पर जिनके स्वर्ण-चन्दन तिलक
वे भाल आज फीके हैं,
-ये सब
काल के नतीजे हैं
ये-सब काल के नतीजे हैं.....।

हे आत्मन् !
तू किसे अपना मान रहा है?
अपने भी सपने ही हैं
स्वप्न का सम्राट बन गया
तो क्या सचमुच का सम्राट हो गया ?
निद्रा में जाने के पूर्व जो था
वही सत्य है

स्वप्न के राज्य को प्राप्त कर
तू कैसा फूल गया?
उसके मद में तू सत्य को भूल गया

सत्य तो यही कि
तू ही राजा, तू ही रंक
तू ही बेटा, तू ही बाप
और तू ही तो शक्ति-रूप भगवान्
तो-फिर बता-
क्यों नहीं करता तू
शक्तिरूप भगवान् की आराधना
या
भगवान् की आराधना?

तू देखना चाहता है
पर की बुराई
पर को बुरा कहने के लिए
या अपने को अच्छा बतलाने के लिए

पर की बुराई कहनेवाला
क्या कभी अच्छा हुआ ?
यदि निन्दक ही होता श्रेष्ठ, तो
'दोषवादे च मौनम्' सूत्र हो जाता व्यर्थ

हे ज्ञानी ! तू खोज-
निज के अन्दर बुराइयों का समुन्दर
उन्हें दूर कर
और बंद कर पर को देखना
बंद कर पर को देखना
बंद कर पर को देखना ।

❁

जीवन मिला है
जीने के लिए,
पुनः जाना होगा
काल की कोख में,

विवेकशील पुरुष
मृत्यु के पूर्व
अमर हो जाते हैं,
मृत्यु हरती है उनकी देह
न हर पाती उनकी स्मृतियाँ
इसलिए
दिखाओ पुरुष बनकर
कुछ करो ऐसा-
जो अपने में हो आश्चर्य-सा
और हो सत्य अविनश्वर
सत्य औ अविनश्वर।

❁

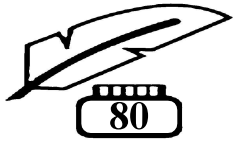

हृदय
जो होता कोमल
औ नहीं होता पाषाण-सा
वही हृदय कमल-सा

जो सन्तों-भगवन्तों के चरणों में
जाने को मचल उठे
जिनवाणी को सुन-सुनकर
वात्सल्य का पराग जिससे निकल पड़े

-नहीं उक्त गुण
तो समझना
वह हृदय कमल नहीं
और नहीं कमल-सा
बल्कि वह तो पाषाण-सा।

❁

आस्था का नेत्र
अंतस् का नेत्र है,
प्रेम-वात्सल्य, नेह, अश्रु का क्षेत्र है
टपकता है जिसमें
आस्था का गुरु/प्रभु

यदि नष्ट हुई आस्था
तो
अस्त हुए गुरु/प्रभु

आस्था का स्थान है धर्म
आस्था ही शास्ता की प्राप्ति का सोपान

हे मन !
आस्था को जोड़
अनास्था से मुख मोड़
हे मन ! आस्था को जोड़
अनास्था से मुख मोड़।

❁

सन्त-हृदय है सत्य का आगार
यही तो है सन्त का शृंगार

जो सत्य पर जीता है,
सत्य पर ही चलता है,
सत्य को सुनता है,
सत्य ही सुनाता है,
वही तो सही मायने में
सन्त होता है।

❁

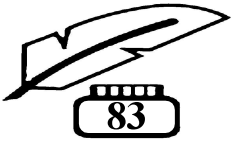

अहिंसा-धर्म को जान
यही इंसान की शान
मानव के लिए वरदान
मानवता की पहिचान

जो 'जियो और जीने दो' की
राह अपनाता है
वही तो सही अर्थों में
अहिंसक कहलाता है.....।

❁

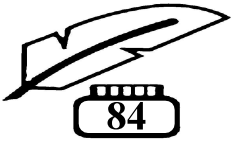

'पर' द्रव्य का हरण
है पाप का वरण
निज कुल की कुलीनता
हो जाती इससे नष्ट
और हो जाता सारा जीवन भ्रष्ट....

अहो भव्य!
'अस्तेय' धर्म को जानो
अपने 'निज' को पहिचानो
जो जीव इसे कर लेता उजागर
वही हो जाता विश्वासी
इस जग में भी
और आगे भी.....

रखी-भूली-पड़ी पर-वस्तु को
लोष्ठ-सम जानो
अग्नि-सम पहिचानो
अग्नि तो तन को ही जलाएगी
चोरी तो भव-भव में भटकाएगी।

❁

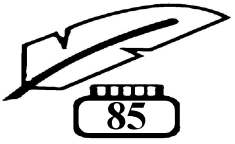

नहीं हुआ मर्दन
मदन का जब तक
कितने ही करो
व्रत-शील-उपवास
पर वह-सब पाखण्ड ही कहलाएगा

शील-स्वभाव का होगा जब जन्म
हमारे अंतस् में
तभी प्रारंभ होगा धर्म
हमारे जीवन में

शील बिना शोभा नहीं नर-नारी की
और आ जाते वे-सब श्रेणी में व्यभिचारी की

हैं योद्धा बहुत इस वसुधा पर
जो दंती के दाँत खींच सकते हैं
सिंह की मूँछ उखाड़ सकते हैं,
भुजंग के मस्तक से मणि निकाल सकते हैं
अहो ! वे योद्धा किस काम के
जो कर बैठते हैं
अपने शील-स्वभाव को भी भंग
'काम' के वशीभूत ?

जिन्हें आत्म-रमणी सुहाती है,
वे पर-रमणी से, पर की रमणी से
परे हो जाते हैं

चाहो तो स्व-रमणी या-फिर पर-समणी या पर की रमणी
एक-साथ सम्भव नहीं दोनों का साथ या सब का साथ
परम्परा से एक का रमण स्वर्ग और मोक्ष
दूसरे का संपर्क
नरक/तिर्यंचरूप अनन्त संसार,
दोनों का फल यही है आगमानुसार.....

हे भव्य !
न रमण कर संसार की रमणियों में
आत्मसात कर ले आत्म-रमणी को
नहीं विकार, नहीं वासना इसमें
बल्कि इसमें तो होगी साधना की सिद्धि
आत्मज्ञ होने से

महिमा गायी जाती है सम्पूर्ण लोक में इसकी
अग्नि नीर हो गयी प्रभाव से जिसकी
नाग बन गया पुष्पमाल
चीर हो गया विशाल
शूली बन गई सिंहासन
यही तो कहलाती ब्रह्म की चर्या भी

आगम-पुराण-शास्त्रों में जिसे प्राण कहा संयम का
उसे, हे विशुद्धात्मन्! तू समझ प्राणों से प्रिय
प्राण चले जाएँ, पर नहीं जाना चाहिए प्रण कभी
ब्रह्मचर्य पालन करें सभी,

अर्थ/काम को हेय जानकर
धर्मपुरुषार्थ को श्रेय मानकर
मोक्षपुरुषार्थ पर रखता है जो कदम
वह आत्मब्रह्म में होकर लीन
हो जाता परंब्रह्म
नहीं रखता भव-भव में फिर कदम

ब्रह्म-व्रत पलता निर्दोष उसका,
इष्ट/गरिष्ठ अशन में गृद्धता नहीं जिसकी,
परपुरुष/स्त्री पर दृष्टि नहीं जिसकी
नहीं उबटन, नहीं अंग-मर्दन, नहीं राग,
शृंगार इस नश्वर देह का जो न करता

भोगों की स्मृतियाँ,
विस्मृत हो गईं जिसकी
कामी-जन और कामुक सोच से सम्पर्क नहीं जिसका
रहता है संत-समागम कुलीन सत्पुरुषों से उसका

जो करता है साहित्य का चिन्तन-मनन
रहता है निर्ग्रन्थों की सेवा में संलग्न
गुणीजनों के बीच जो करता तत्त्वविचार,
उसी भाग्यवान् का होता निर्दोष आचार-विचार;

तन दुर्बल, कषाएँ सबल, बाल सफेद, वासनाएँ कसैली
फिर भी मन भागे,
ऐसे तन के बूढ़ों को
आगम नहीं कहता- वृद्ध या बूढ़ा

दर्शन प्रशस्त, चारित्र प्रशस्त,
प्रशस्त है ज्ञान जिसका
अनुभव-आगम-कुशल मानव ही
जिनवाणी में बढ़ा हुआ,
पहुँचा हुआ और अंततः बुद्धत्व को प्राप्त

कषायें कृश हैं जिसकी,
रहता सजग-जाग्रत, प्रहरी की तरह
कर्मशत्रुओं से लड़ने को तैयार
वही वृद्धत्व-गुण-धारी
उसी की संगति
मोक्ष-पथिक के लिए
होती हितकारी।

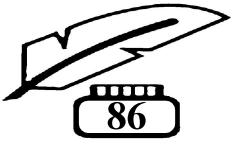

अहो ! संत-स्वभाव कितना मधुर-निर्मल होता
वाणी में अमृत, चर्या में आचारांग झरता है,
धर्म वन-उपवन, पर्वत-गुफाओं में नहीं
धर्म तो श्रमणों के अन्दर होता है,

इसीलिए तो
अर्हत्-प्रवचन कराते
आत्म-दर्शन
आत्म-चिन्तन
आत्म-मंथन,
होती है जिसमें
तत्त्व की विवेचना
देशना सत्य की, अध्यात्म की
प्रवाहित होती है जिसमें
ज्ञान की निर्मल वाग्गङ्गा
भरा है जिसमें
स्वच्छ- पवित्र सलिल
दर्शन-ज्ञान और चारित्र का
और जिससे बुझ जाती प्यास
जन्म औ मरण की.....।

अनेकांत-स्याद्वाद की धुन
बज रही,
अहिंसा व चारित्र की पावन शुचि-मय सरिता
कल-कल नाद करती बह रही,
अर्हत् प्रवचन का नाद
गूँज रहा,
कर पाते अवगाहन जिसमें
भव्य ही
और-फिर वे तैरते, तिरते/ तरते व तारते
भव से.....।

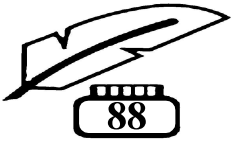

मोक्ष-भवन का
पहला सोपान-
सम्यक्त्व महान्
जिसके प्रभाव से
अर्घवान् भी बने भगवान्

जिसने
शुद्ध सम्यक्त्व को
प्राप्त किया
उसने
अघ का नाश किया।

❁

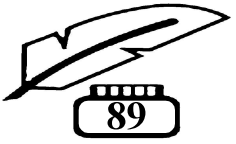

यथार्थ पूछो तो-
धर्म
संतभेष में नहीं
संतस्वभाव में बसता है

जो भेषधारी संत
धर्म के मर्म को नहीं जानते,
वे
संत-स्वभाव को नहीं पहचानते
धोखा देते हैं 'स्व' को
और
खोते हैं अपने भव को.....।

❁

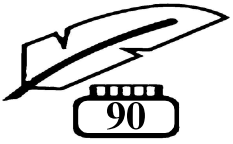

सच्चे गुरु होते
अज्ञान-तिमिर के हरण-कर्ता,
भव-वारिधि से उत्तरण-कर्ता
गुरु ही तो हैं-
भवाटवी में भटके जीवों के सत्पथ-प्रदाता,
निर्वाण-मार्ग के ज्ञाता
और
चारित्र के प्रदाता....

रत्नत्रय धर्म और
परोपकार की भावना
जिसके अंतस् में भरी है,
मोक्षमार्ग पर चलनेवाला गुरु ही सही है
उस विशुद्ध गुरु के
चरण-सान्निध्य में बैठकर
आत्म-ज्ञान का पाठ पढ़ें
और ज्ञानार्जन व साधना से
हम भी
शिवपथ की ओर बढ़ें।

वीर का उपदेश
जियो स्वयं
और
जीने दो सभी को,
प्रत्येक मन की यही भावना कि
मुझे मारे न कोई,
तो-फिर
हे ज्ञानी !
तुम भी न सताओ किसी को.....
तुम भी छोड़ दो सताना
निरीह-मूक-प्राणियों को भी
उन्होंने भी
देखे हैं सुंदर सपने,
पर
नहीं सुना पाते किसी को
अपनी व्यथा-कथा

विपाक है कर्म का
इसीलिए
कोई बना मूक
कोई वाचाल,
पर
अन्दर तो सभी के ही तो हैं
शक्ति-रूप भगवान .....।

हे वीर
अतिवीर, वर्द्धमान,
सन्मति, महावीर !
तेरे शासन में रहकर भी
उठती है बार-बार
यही पीर .....
खो रहा मानव ही
मानवता को
-यही मेरा दुःख।

धर्म के नाम पर
आडम्बरों की भीड़
-यही मेरी पीर.....
यही मेरी पीर....

हे वीर !
आपके शासन में कुछ अल्प-अज्ञानी
आपकी दी हुई शिक्षा को
भूल रहे हैं
भेदभाव-पंथवाद,
गुरुवाद-संतवाद फैलाकर
फल-फूल रहे हैं.....।

ओ मानव !
व्यर्थ में
विवेकहीन बनकर
क्यों बाँट रहा
संघों और समाज को ?
क्या
अपने अहं की पुष्टि के लिए ?...
अथवा
अपने स्वार्थ-की सिद्धि के लिए ?
अरे ! क्यों
व्यर्थ ही कर्म-बंध कर रहा,
भव-सागर में गोते लगा रहा ?

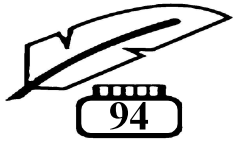

वीतराग देव ही
सच्चे देव
और करुणामयी धर्म ही
सच्चा धर्म

उनकी वाणी ही
वीतराग-वाणी / जिनवाणी
और
इस वाणी पर श्रद्धान रख
धरते जो चरण
उनका गुणगान करते
देव-दानव, नर-मानव, पशु-पक्षी
सब बन चारण
और इसीलिए तो
उनके चरण : गुरु-चरण
उनके चरण : महा-चरण
और बन जाते वे चारितसार-से चरण
छप जाते वे मन भीतर तक
और दिखाते चलते
चलाते चलते
नयनपथगामी बनकर
लगातार मोक्ष-पथ पर.....।

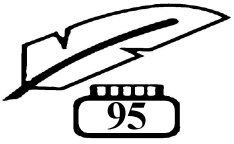

आत्म-साधना की
भावना ही होती
आत्म-साधक की साधना
साधना में नहीं कामना
कामना में नहीं साधना
और इसीलिए तो
आत्म-सिद्धि का सेतु होती
साधना...।

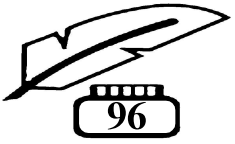

सच्चे साधक की
एक ही भावना :
कैसे शमन हो
भव-भव की वासना?
बस, यही लक्ष्य
यही भावना
कैसे भी करूँ
शुद्धात्म-आराधना?

समताधारी, निरम्बर, धरती के देवता
वे हैं...
जो सच्चे दिगम्बर,
यति, मुनि, ऋषि, अनगार,

है वास जिनका
गिरि–गुहा, शून्यागार, वन–उपवन

शैय्या जिनकी
भूमि, पाषाण-शिला, तृण-फलक,

रहते लीन जो अपलक
निज स्वभाव में,
नहीं राग रमणियों में
कंचन मणि मुक्ताओं में

और नहीं द्वेष जिन्हें
विष, विष-धर, सिंह, क्रूर-प्राणियों से,

जो देते प्राणिमात्र को
विश्वबन्धुता के सूत्र

और इसीलिए तो वे वीतरागी तपोधन
हो जाते वन्दनीय प्राणिमात्र के,

चाहे कोई वंदन करे या न करे
पर
देते वे सबको आशीष
सदा अभय-मुद्रा में.....

चलो, हम भी लें कुछ आशीष.....।

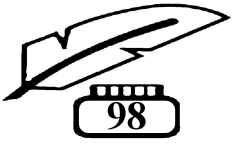

कंचन-कामिनी के त्यागी,
मुक्ति-वधु के अनुरागी,
फिर भी वे
सच्चे ब्रह्मचारी

नहीं जिन्हें राग
तन से, धन से व कुल से

अहिंसा, सत्य, अस्तेय,
अमैथुन और अपरिग्रह
जो धरते

पर जिन्हें राग
मुक्तिपथ से
और जो बनते सबके
नयन-पथ-गामी
इसीलिए तो वे सच्चे वैरागी।

मधुर मधुवन और मधुशालाएँ
लुभा नहीं पायीं जिन्हें,
सुर-सुन्दरियाँ भी
ब्रह्म-भाव से डिगा नहीं पायीं जिन्हें,
ऐसे-ही महामानव बनते
परमपूज्य, पवित्र, संयमधारी यतीश्वर,
है उनके चरण
वन्दना हमारी।

वे ही समझे
धर्म के मर्म को,
जिन्होंने प्राप्त किया
सम्यक्त्व-पूर्वक सम्यग्ज्ञान
फिर धारण किया
निर्दोष चारित्र
पाएँगे वे निश्चित ही
भव्य पद निर्वाण।

❁

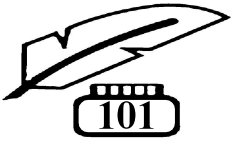

जयवन्त हों सदा
वे साधु निर्ग्रन्थ,
जो चल रहे सतत
शिव-पथ पर
बनकर
मुक्ति-वनिता के कन्त।

❁

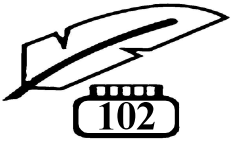

सूखे तरुवर
सूखी नदियाँ और सरोवर भी,
तब भी वे वीतरागी तपोधन
कर्णांजुली से पीते
निरंतर
जिनवाणी।

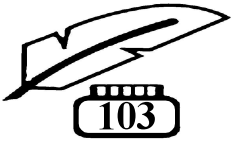

निज योग को
योगी लगाते
निज-योग में,

नहीं जाने देते
निज-उपयोग को
पर-योग में,

जननी सँभालती निज लाल को जैसे,
योगी सँभालते निज-भाव को वैसे....।

❁

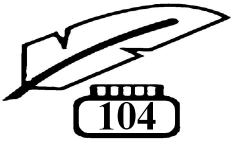

नहीं आती स्मृतियाँ
शीतल घट-नीर की,
नहीं आती स्मृतियाँ
सरोवर नदी-तीर की,

इसीलिए तो वे पान कर पाते
आत्म-घट में
स्वानुभूति के नीर को
और इसीलिए वे कहलाते–
ध्यान-धर/ ध्यानी
योग-धर/ योगी
क्योंकि वे निरन्तर करते
ध्यान आत्मा का
इसीलिए बढ़ते
उनके चरण
मुक्ति-पथ पर

नमोस्तु उन्हें
नमोस्तु उन्हें।

❁

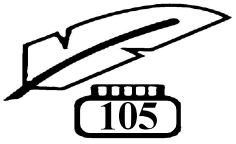

हिम ऋतु
परम शीतल समीर
कण-कण काँपते
हिम-कण झाँकते,

ऐसे में धन्य हैं दिगम्बर
धरती के सच्चे देवता
निर्वसन और वासना-शून्य

धारण कर धृति
बैठे सरिता-तट
ध्यानाग्नि में तापते
नहीं किंचित् भी हिम-ऋतु में काँपते
शीत-योग की कठिन साधना कर
निज-ब्रह्म में वे झाँकते.....।

❁

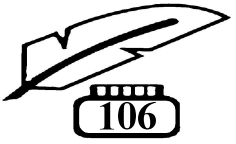

गरजें बादल
बिजली चमके
बहे शीतल समीर,
काली घटा आकाश में
वरसे नीर मूसलाधार,

गायें भी वन छोड़
घर चलीं
देख आकाश के रूप को
ऐसे पावस में
दिशाएँ
करें भयभीत,

ऐसे में भी
धन्य श्रमणराज
जो होते नहीं टस से मस
रहते पर्वत से अटल,
निश्चल, नि:कम्प
और जो ध्यावें
आत्मस्वरूप
चलो, नमन करें उन्हें.....।

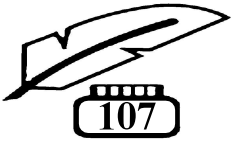

वनचरों का चरण
सिंह सियाल सेही अजगर भी
करते विचरण जहाँ,
ऐसे जंगल में दूर-दूर तक
नरों की गन्ध नहीं,

पर वहाँ भी
निर्भय हो नि:शंक
करते कर्मों का अन्त
निश्चल, निरंबर सन्त
इसीलिए तो वे ही हैं
सच्चे वीतरागी भदन्त.....।

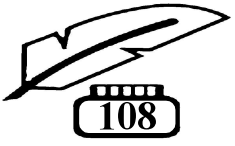

वृषभ, वृषभदेव, वृषभसेन से
वर्द्धमान, गौतम तक
जिनशासन के सूत्र
वही मार्ग, वही मार्ग के घटक भी,

समय ने परिवर्तन अवश्य किया
पर समयसार वही

तप तपते
कर्म कटते/झरते
आत्म-दीप जलता
प्रकाश होता निष्कलंक

आत्मानुभूति होने लगती
और तब समय समयसार में ही नहीं
परम समयसार में चला जाता

चलो हम भी यत्न करें
समय, समयसार, परम समयसार की ओर
बढ़ने का .....।

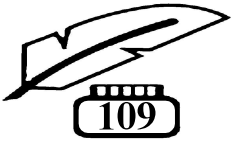

समता से बड़ी सम्पत्ति
लोक में
नहीं और-कोई

पर वह तो रहती
तपोधनों के पास

इसीलिए तो वे अपरिग्रही होकर भी
कहलाये जाते
सम्पत्तिशाली, वैभवशाली

जबकि होता नहीं अन्य-कुछ
अन्यथा-कुछ उनके पास
पर फिर-भी वे
वैभवशाली, सम्पत्तिशाली.....।

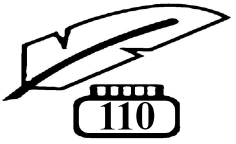

रागी जब सोता होता
स्वानुभूति की भूमि पर
वैरागी तब जागता होता
और अमृत-पान करता होता
धरा पर

रागी जब रमता
विषयों के कीचड़ में,
वैरागी तब धोता होता
कर्म-कलंक आत्म-धरा से

बताओ, कहाँ चलें–
कीचड़ की ओर
या-कि आत्म-धरा की ओर ?

रागी बनें
या-फिर वैरागी ?

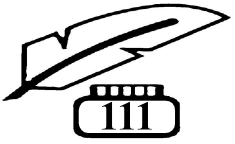

धरती के देवता
देवत्व से युक्त हैं,
पंच-परमेष्ठी पद में विराजे
वे बड़े अजीब हैं !
जिसे छोड़कर आए थे
उधर देखते भी नहीं !

क्या ज्ञानी ! वमन पर
मन जाता है कभी ?
या-कि कोई दृष्टि डालता है कभी ?

उसे तो धोकर बहा देता है
या-फिर मिट्टी डाल देता है उस पर
सजग नीरोग प्राणी

चलो, मिट्टी डालें, धोकर बहाएँ
वमन...।

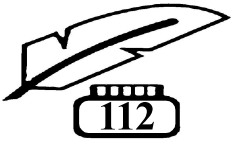

निज भावों को सँभालना
मित्र! सम्यक् पुरुषार्थ है,
आर्त-रौद्र ध्यान से
स्वात्मा की रक्षा करना
सत्यार्थ धर्म्यध्यान है,

रखते समता जो प्राणिमात्र पर
वे ही सच हो पाते हैं
ध्याता निर्ग्रन्थ .....।

❁

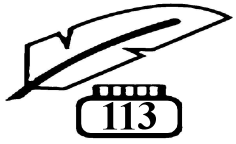

समता समकित
तो
ज्ञानी! निर्ग्रन्थ के लिए प्राण

समता समकित यदि निकल जाय
तो निर्ग्रन्थ निष्प्राण,

धन्य वे श्रमण
जो कर पाते
पर के प्रहार से
पर के आकर्षण से
पर के जुड़ाव से
और पर के सन्निकर्ष से भी
अपनी रक्षा

तभी तो वे ही बढ़ पाते
मुक्तिपथ की ओर.....।

❁

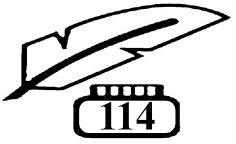

समता में होता
साधुता का बोध

समता में ही होता
साधुता का शोध

समता ही होती
समाधि का अन्तरंग आलम्बन,

समता गई
तो होगा बस
जन्म-जन्मान्तर से होता आता
जन्म-मरण,

समता यदि रही, तो....
निश्चय से होगा
मरण नहीं,
समाधिमरण..... ।

❁

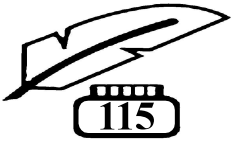

तन से
प्राण चले जाएँ,
पर मन से
समता न जाने पाये,
प्राण जाने पर तो
इस पर्याय का मरण होगा
समता के जाने पर तो
मेरे भाई !
मोक्षपथ छूट जाएगा
पता नहीं कि फिर कब मिले ?

❁

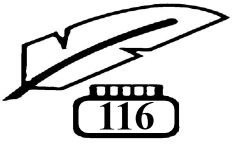

होती
मरण-समाधि तब
जब शान्त होती
रसना,
मोह-पिशाच
अंत:करण से निकल जाता,

अति-मित्र और अति-शत्रु –दोनों से
हो जाता साम्य-भाव
और तभी छूट जाता
तन-पींजड़े का राग भी,

.....पर विरले ही कर पाते
इसको शान्त
और
तन-पींजड़े के राग को भी।

❁

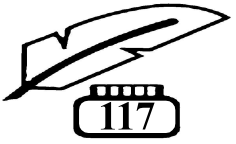

तन-जीवन-यौवन-धन-यश
चपला-से चंचल
चपला चमकती
क्षण में विलीन हो जाती गगन में,

तन-शृंगार वसन-भूषण
सब बंधन के आभूषण

यदि मिल जाए समता
तो मिल जाता भूषण
और
मुक्तिपथ आभूषण भी.....।

❁

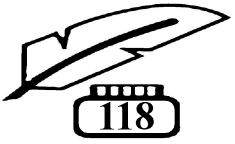

अहो प्रज्ञ!
समता-शून्य साधना
तो हो सकती है
शरीर कृश करने का साधन
.....पर नहीं होते इससे कर्म कृश

कर्म कृश तो होते तभी
जब उतरता
समता-स्वभाव अन्त:करण में

करो कर्म का अन्त
और बन जाओ
समता-धन
बस, केवल समता-धन.....।

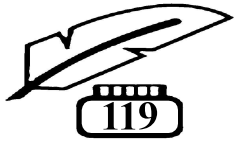

करते हैं वंदना
बंध ना,

जिसमें बंध ना
वही है वीर की वन्दना

हर पल/ हर क्षण
योगीश्वर करते हैं
जिनवर की वन्दना,

क्षीण होते जिससे बंध
वही कहलाती वन्दना

चलो करें बंध ना
चलो करें वंदना.....।

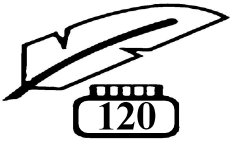

स्वाध्याय
दिव्य-साधना
भाव-विशुद्धि का निर्मल उपाय,

नेत्र-चित्त दोनों को
युगपत् जो करता लीन
वही स्वाध्याय,
सतत स्व-अध्याय ही है
इसीलिए
सच्चा स्वाध्याय
सतत स्व-अध्याय ही : सच्चा स्वाध्याय।

आगम
पवित्र आँख है,
आँख-विहीन होता है
अंधा,

अंधा-पुरुष
सम्यक् मार्ग को
प्राप्त नहीं होता,
आगम-विहीन
मोक्षमार्ग को
प्राप्त नहीं होता,
इसीलिए तो साधु का नेत्र तो
मात्र आगम ही होता
केवल आगम ही.....।

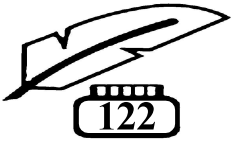

वस्तुव्यवस्था
त्रैकालिक स्वतंत्र है,
नहीं कर सकता कोई
इसे परतंत्र,

अहो!
पर-पदार्थ को तो अज्ञ
स्व मान ही सकता है,
पर क्या उसे
स्व बना सकता कभी?

इसीलिए ज्ञानी! यही मान कि.....
तू स्वतंत्र
कण-कण स्वतंत्र
और मत प्रयास कर
किसी को परतंत्र करने का।

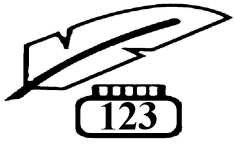

तत्त्वज्ञान
स्वानुभव
अन्दर का विषय है

ज्ञानी!
अन्दर में प्रवेश करने का
यत्न कर
तत्त्वज्ञान हो जाएगा
स्वानुभव मिल जाएगा
और तू स्वयं
भगवान बन जाएगा..... ।

राग में धर्म नहीं,
धर्म तो वीतराग-भाव में

बिना वीतरागता के
क्या होता कोई वीतकलंक

वीतकलंकता के बिना
भूतार्थ सुख होता कहाँ?

सत्यार्थ-सुख की है यदि इच्छा
तो करो राग से निजात्मा की रक्षा।

❁

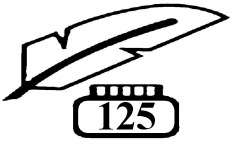

व्रतों में होता जब अतिक्रमण,
तपोधन करते तब उसका प्रतिक्रमण,

पर-निन्दा करना होता सरल
पर
करते निज-निन्दा तपोधन मन से–
मैं पापी
मैं दुरात्मा जड़बुद्धि
मैं मायावी
मैं लोभी
मैं राग-द्वेष-मलिन

जो किए दुष्कर्म मैंने
प्रभो! हों वे-सब मिथ्या
–ऐसा कहते वे मुनीश्वर,
इसीलिए तो भूत-दोषों का
होता है प्रति-क्रमण–
मिच्छा मे दुक्कडम्.....।

❁

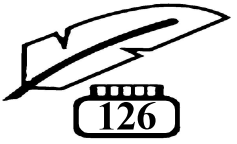

अहो! संस्कार अनादि के,
विषय-भोग औ काम-कथा के,
नहीं एकत्व-विभक्त
निज ध्रुव-ज्ञायक-स्वभाव के,

प्रज्ञ!
कर पुरुषार्थ
ज्ञानानन्द स्वभाव की प्राप्ति का,

निज-स्वभाव तो होता
पर-भावों से भिन्न
त्रिकाल

रे मन!
आत्मस्वभावं परभाव-भिन्नम्।

❁

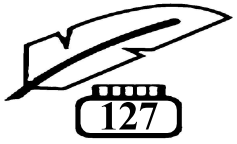

सत्य तो ख्यात
सत्य ज्ञात
फिर-भी मूढ़ रहता
सत्य से अन्विज्ञ

मेरे मित्र! यह बताओ-
सत्य को नहीं जानने से
या नहीं मानने से
क्या सत्य असत्य में बदल जाएगा
या-फिर बदल पाएगा?

❁

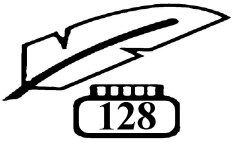

अहो ज्ञानी !
शास्त्रज्ञान से भिन्न होता
आत्म-शोध,

आत्म-बोध आत्म-शोध है जहाँ
वहीं होती
सत्यार्थ स्वानुभूति,

जहाँ स्वानुभूति
वहाँ नहीं विषयानुभूति,

उभय-अनुभूति
युगपत् कहाँ ?

❁

नय और नयन
दो हैं-
एक निश्चय
और एक व्यवहार,

एक देखने का व्यवहार कराता
दूसरा देखने का निश्चय

दोनों में से एक भी गया
तो ज्ञानी !
तत्त्व-बोध में हो जाता
काना/काणा

दृष्टा यदि
दोनों नय-सापेक्ष चले तो
खुलें द्वार मोक्षमार्ग के
मोक्ष के।

❁

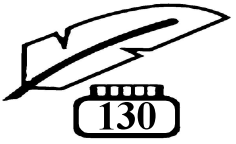

मार्ग बहुत लम्बा
राजपथ पर
धीमे-धीमे चलो
चलना बंद मत करो,

हर पल हर कदम
सँभल-सँभल कर
चलते चलो
लक्ष्य पर दृष्टि रख कर
चलते चलो,

मिल जाएगा लक्ष्य
अपने-आप
क्योंकि दृष्टि साफ तो
बोध साफ
चरण साफ।

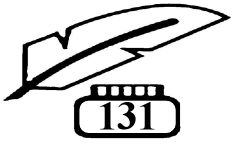

योगी बनकर चलो
योग-लीन होकर चलो
भोग-दृष्टि तजकर
पर को छोड़कर चलो,

एक कणिका भी जहर की
मधुर दुग्ध को
विषाक्त या विष-मय कर देती है,

ठीक वैसे ही
भोग की थोड़ी-सी भावना भी
योग को नष्ट कर देती है
और कर देती है
साधक को पथभ्रष्ट.....।

अवनि-तल पर
न कोई अनुकूल
न कोई प्रतिकूल,

जिनसे राग होता
वे लगते अनुकूल
जिनसे नहीं होता राग
वे लगते प्रतिकूल

पर वस्तुतः
न कोई अनुकूल
न कोई प्रतिकूल।

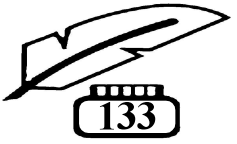

शीतल समीर और नीर
बहता
तीर नदी के
भू-नभ-गगन में,

तब रहते मगन
मुनीश्वर
आत्म-भवन में,

ध्रुव सत्य को लखते
निजानुभव में

नहीं प्रयोजन रखते
नीर से
समीर से
नदी के तीर से
भू नभ और गगन से भी

वे तो तकते और लखते रहते
निजानुभव को
निज-भवन में।

अखण्ड में
खण्ड नहीं,
ध्रुव में
अध्रुव नहीं,

ज्ञायकभाव ही
ध्रुव भाव
चैतन्य-ज्ञान-घन
आत्मद्रव्य ही अखण्ड

नहीं करो
विषाद विकार,

न करो ध्यान
खण्ड का
अध्रुव का

ध्याओ बस–
अखण्ड ध्रुव आत्म को,
क्योंकि वही तो बनाएगा तुम्हें
परमात्मा।

❁

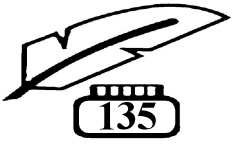

समझ श्रेष्ठ है
पर को समझाने की,
होते हैं जगत् में सभी ज्ञानी
पर को ज्ञान दिखाने के लिए,

यदि अपने को समझ लेते
अपने को समझा लेते
ज्ञानी बन जाते
और पा जाते
मोक्षपथ

चल पड़ते फिर उस पर
पहुँच जाते मोक्ष-मंजिल

इसीलिए मेरे मीत!
बस, अपने को समझ लो
और अपने को समझा लो
हो जाएगा भला
तुम्हारा भी और मेरा भी.....।

❁

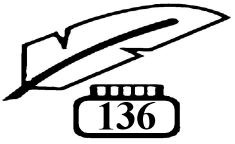

चारित्रधर्म तभी पलता
जब
समता-शील निज-घट में भरता,

बिना शील-समता के
चारित्र नहीं बनता सम्यक्-चारित्र,

बिना सम्यक्-चारित्र के
कोई
शिव-पथिक
कैसे बन सकता ?

❁

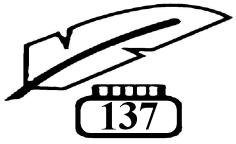

जीवन में समता है
तो
सच्ची साधुता है,

जीवन में सत् के प्रति अनुराग है,
तो
सच्चा वात्सल्य है,

जीवन में सच्ची विनय है
तो
सच्चा ज्ञान है,

जीवन में सच्चा चारित्र है
तो बस फिर क्या
निर्वाण है
निर्वाण है
बस, निर्वाण ।

❁

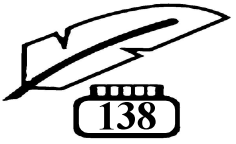

तत्त्व-देशना श्री वीर प्रभु की
संशय-विमोह-विभ्रम-हारी

निर्वाण-पुरी का बनता स्वामी
जो सुनता और गुनता
वीर प्रभु की वाणी

श्रुत-सागर में कर अवगाहन
और रख लक्ष्य निज की डगर
चल पड़ेगा तो
मंजिल मिल जाएगी
आत्मबोध हो जाएगा
मोक्षपथ खुल जाएगा।

❁

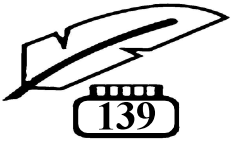

ओ राग!
निष्प्रयोजन में भी तू
प्रयोजन का करता अन्वेषण

निज सुख खो देता
रागी
पर के सुख-दु:ख के कारण,

ओ राग!
आत्मधर्म का
भान न होता
तेरे ही तो कारण।

❁

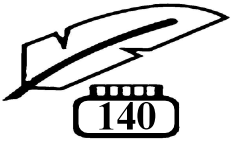

पाप-पंक से भिन्न रहते
करते निजानन्द का पान

रमे रहते श्रुत में
श्रुत की स्मृति में

आत्म-रमणी का रमण करते
जो

ऐसे एकान्त-वासी निर्ग्रन्थों के चरणों में
शीश स्वत: झुकते
चलो, करें नमोस्तु उन्हें.....।

❁

ममता भव-वर्द्धनी है
समता भव-हरनी
भ्रमण-हरनी

ममता में या ममता से
जो मचल गए
वे समता से
हट गए
स्वभाव से
फिसल गए.....।

❁

चिन्तन विशुद्ध
तो चर्या भी विशुद्ध

चित्तवन में फँसा तो
चिंतन अशुद्ध
चर्या भी अशुद्ध

चिन्तन यदि विकृत
तो होगी निश्चय ही चर्या भी विकृत,

चर्या की विशुद्धि के पहले
करो चिन्तवन विशुद्ध,

ओ मानव !
तेरा पूरा जीवन तो
केन्द्रित है
चिन्तन/चिन्तवन पर नहीं
चितवन की धुरी पर

इसीलिए चितवन को तज
और रख नजर
चिन्तन/चिन्तवन की डगर।

❁

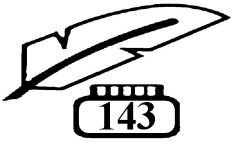

प्रज्ञ !
देख निज को
निज-दर्पण में
और बोल–
तेरा अन्त:करण कैसा है?

दर्पण कुछ मैला-सा
दर्पण में कुछ मैला-सा दिख रहा है

विषयों की कालिख पुती है
जो धूमिल कर रही
अन्दर के तेजोमय चेहरे को
कर ले साफ
जिनामृत के नीर से

बोल– किसे साफ करेगा–
दर्पण को या
अन्त:करण-रूप आत्मन् को?

❁

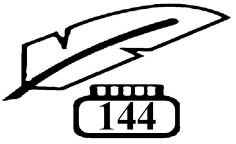

तत्त्वबोध
आत्मशोध का साधन

आत्मशुद्धि के बिना
भव-सागर से
तिरता कहाँ कोई ?
तरता कहाँ कोई ?

यदि तरना है तो
आत्म-तीर जाना होगा
आत्मशोध करना होगा
और उस पथ पर चलके
आत्मबोध पाना होगा.....।

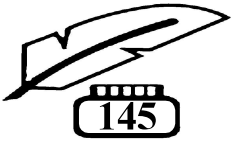

आत्मधर्म भिन्न है
देहधर्म से

पर अल्प-धी बहिरात्मा
दोनों को कहते- अभिन्न,
पर पर-द्रव्य
निज-स्वभाव में नहीं समाता कभी
और रहता सदा अभिन्न,

इसीलिए तो
आत्मा का स्वभाव होता
पर-भावों से सदा भिन्न
और जिनवाणी कहती-
आत्मस्वभावं परभाव-भिन्नं।

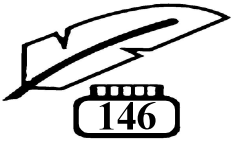

अहो ! चैतन्य !
क्या कभी तुम चेत पाओगे ?
विषयों की आग को
भोगों के घृत से
शान्त कर पाओगे ?

अहो पगले !
घृत से अग्नि कहीं शान्त होती ?

विषयों की आग यदि
शान्त करना है तो
डाल
सच्चे चारित्र का नीर
धुल जाएँगे विषय
खुल जाएगा चैतन्य.....।

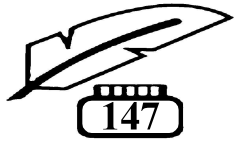

एकान्त
जीवन को
महान् बना देता है,

एक-अन्त को जो लखता
वही परमात्मा बनता,

एक-एक होकर
अन्त होते आए अनन्त पर अनन्त

लेकिन
अनन्त अन्तों को लख
जो तत्पर होता साधना में
और अन्त करता निज को लख
होते आए अनन्त अन्त का
वही बनता महन्त भगवन्त.....।

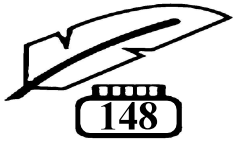

तीर्थ तो तीर्थ हैं,
पर क्या सभी तीर्थंकरों से सनाथ
सभी तीर्थं हैं?

जैनों की परंपरा तो
तीर्थं रचने के कारण ही
तीर्थ-कर को तीर्थंकर कहती

और तीर्थ भी वही कहा जाता–
जहाँ लोग तिरते
जहाँ से तरते
और जहाँ से तारे जाते

इसीलिए इतिहास कहता–
तीर्थंकरों के तीर्थ से लोग
तिरे भी हैं, तरे भी हैं
और तारे भी गए हैं.....

चलो, हम भी तिरें
तीर्थ चलें.....।

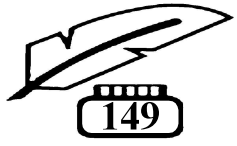

जीव को देखो
जीवत्व को देखो

पर्यायें तो
भिन्न-भिन्न दिखती हैं
पर जीव नहीं
जीवत्व भी नहीं

इसीलिए
करो प्राणि-मात्र से अनुराग
जीव-मात्र से अनुराग
भेद-भाव की दीवाल मिटा डालो
हर जीव को अपना-सा मान लो
और करो व्यवहार अपने-सा

तब न होगी हिंसा न झूठ
न चोरी न अब्रह्म
औ न कोई धरेगा परिग्रह

तब होगा अपने-आप कल्याण
बस कल्याण.....।

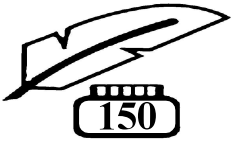

गुण बनाते महान्
गुण ही बनाते हैं भगवान्

गुणवान् पाता–
सब जगह सम्मान,
गुण-विहीन नहीं पाता –
कहीं भी सम्मान

करो मुमुक्षुओ !
गुणवानों का सम्मान।

❁

अनन्त गुणों का स्वामी है
भगवान्–आत्मा

हमारी कामुकता ने
बना डाला इसे गुण-हीन

सर्व-शक्तिमान को हमीं ने
बना डाला बल-हीन

विमुक्त शक्तिमान को हमीं ने
बना डाला अनुचर

धारो ब्रह्म-भाव
छोड़ो कु-भाव
और पहिचानो–
निज
भगवान्–आत्मा को.....।

❁

अकंप साधना
अकंपनाचार्य की

अचल रहे
निज ध्यान में
नहीं चला/हिला सका
बलि अभिमानी भी

सुमेरु से अचल
निर्ग्रन्थ तपोधन
धरती के देवता
नमन उन्हें.....।

❁

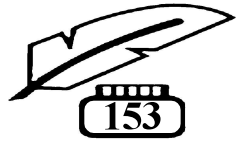

अन्तर से
तू स्वयं है भगवान्
फिर-क्यों बन रहा अघवान्?

पहिचानो–
स्वयं के भगवान् को

छोड़ो व्यर्थ के अघ को
और करो न्हवन स्वयं का
अन्तर की सरिता में .....।

❁

नि:शंकिता :
आत्म-शांति का मूलमंत्र

पर
शंकित रहता
प्रतिक्षण, प्रतिपल
संसारी प्राणी
नहीं आती उसे
अनुभूति की गंध भी

तन के रोग तो मिटाये जा सकते हैं,
पर नहीं मिटता संशय का रोग
आसानी से...।

❁

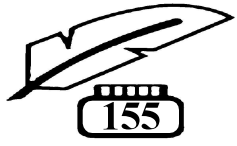

कहा गया शास्त्रों में-
आकांक्षा है कालकूट विष

लोग मर रहे,
पर इच्छाएँ/आकांक्षाएँ बढ़ रहीं
घी डाली हुई ज्वाला की तरह

इसीलिए तो
सगों के संबंध भी आज टूट रहे
क्योंकि तुम्हारी नहीं
मेरी इच्छाएँ बलवती

पर इच्छाएँ चाहे मेरी हों
चाहे हों उसकी
होतीं आग में घी-सी
इच्छाओं का घी जब तक पड़ता रहेगा
भष्मीकरण की ज्वाला जलती रहेगी
क्यों, कब तक जलाओगे इसे?
कब तक डालोगे इच्छाओं का घी
भष्मीकरण की ज्वाला में ?
और कब तक जलते रहोगे इसमें?

❁

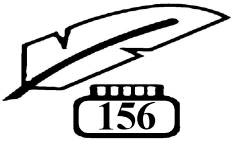

आकांक्षाओं से
श्रद्धान विषैला होता है
इसीलिए
सच्ची श्रद्धा को जीवन्त रखना है तो
आकांक्षाओं को विराम दो
सत्यार्थ-मार्ग पर चल सकता
वही
जो पालता नि:कांक्षित-अंग

आकांक्षाएँ कम होतीं
धर्म बढ़ता
मर्म पलता

इसीलिए
आकांक्षाओं-इच्छाओं का अंत
संसार का अन्त.....।

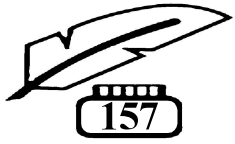

द्रव्य
निज-स्वभाव में रहते
पर-भाव को स्वीकारते कहाँ ?

पर..... भो प्रज्ञ !
तू क्यों द्रव्य-स्वभाव भूल रहा ?
पर के स्व-भाव से
स्वयं के भाव बिगाड़ रहा ?

कहीं कोई दूसरे के कारण
अपना घर बिगाड़ता ?
तू तो अपने को बिगाड़ रहा
अपना घर उजाड़ रहा
बता- कब तक
उजाड़ता रहेगा निज-घर
पर-भाव में फँसकर ?

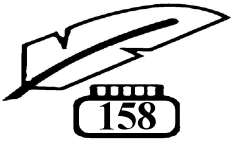

साध्य को देखनेवाला भी
साधनों पर भी एकबारगी
दृष्टि डालता जरूर

पर
साध्य की सिद्धि के लिए
सच्चा साधक
साधनों से रखता न राग और न द्वेष

सहज भाव से टिकटिकी बाँध
निहारता रहता
केवल साध्यभूत लक्ष्य को

इतना ही नहीं
वह तो साधनों में
उलझता भी नहीं.....

पर आज लोग
साधनों में उलझ रहे
साध्य को भूल रहे।

❁

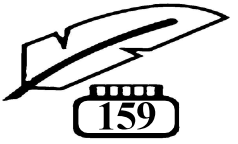

होता नहीं
धन से
धर्म.....,

वह तो होता
परिणामों से....
और आचरण की विशुद्धि से

धन से यदि
धर्म होता-होता
तो मेरे मित्र!
होते सारे धनिक
धर्मात्मा.....।

❁

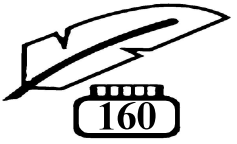

क्या विचित्र है यह जग
अधिक हैं इसमें
दूसरों के सुख से
दु:खिया
पर कम हैं यहाँ
अपने दु:ख के दु:खिया....।

❁

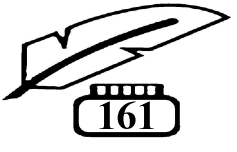

अरे आत्मन् !
तू तो
ज्ञान-दर्शन-स्वभावी
तो-फिर क्यों रमता
पर में
पर-द्रव्यों में.... ?

❁

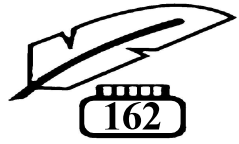

हर रूप वाले को
पहले से मिला होता
स्वरूप.....
पर
फिर-भी मगन रहता
रूप के बदलने में
और भटक जाता स्वरूप से।

❁

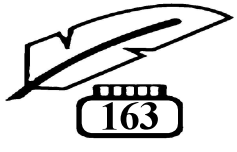

जो
पर की करता
उपेक्षा
और रमता
निज में
वही
लीन होता
अकिंचन में.....।

❁

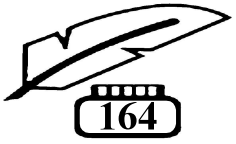

नहीं बन पाओगे
ब्रह्मचारी
पाबन्दी लगाने से
संतान की उत्पत्ति पर....,
स्त्री या पुरुष के संसर्ग पर....

यदि लगाना है तो लगाओ
वासना पर...,
तभी बनोगे
सही मायने में ब्रह्मचारी....।

लाचारी से नहीं बनता कोई
ब्रह्मचारी
ब्रह्मचारी तो बनता
ब्रह्म में लीन होकर विचरण से

क्यों, बनोगे ब्रह्मचारी ?
करोगे ब्रह्म में विचरण ?

❁

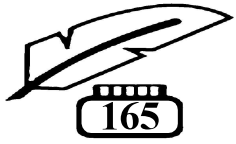

नहीं बनते
जितेन्द्रिय
इन्द्रियों के
छेदन-भेदन से
बल्कि बनते
मन के दमन से
और इन्द्रियों पर जय से.....।

❁

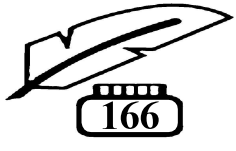

बात करते हैं
योगी
सकारण.....
और भोगी
अकारण....।

❁

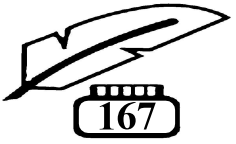

मिटते
दीवाल और दीदार के चित्र
पर
जीवंत रहतीं
श्रद्धा की आकृतियाँ.....
कालों-काल.....।

❁

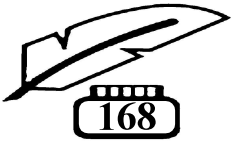

यदि दोगे
भक्ति का कर (टेक्स)
तो पाओगे
मुक्ति-कन्या का कर (हाथ)...।

❁

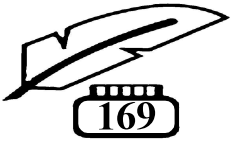

बनते हैं विकारी
भिखारी
विकार के कारण....

इसलिए दुनियाँ में
अधिक हैं
भिखारी नहीं.....
विकारी.....।

❁

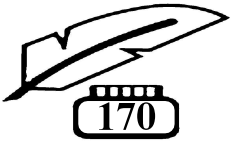

हृदय में
आस्था
और सम्यक् श्रद्धा
तो पत्थर भी
भगवान्
और
कागज भी
प्रभुवाणी/जिनवाणी.....।

❁

काम करते हैं
ज्ञानी
और
विसंवाद करते हैं
अज्ञानी....।

❁

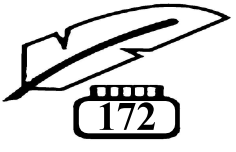

नहीं सूझता
नेत्र-हीन को रास्ता
और
नय-विहीन को
मोक्ष का मारग.....।

❁

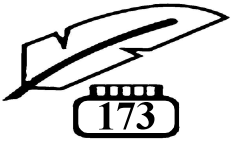

नहीं दिखता
उल्लू को दिन में
काग को रात में

पर
कामी पुरुष को
न दिखता दिन में
न रात में.....।

❁

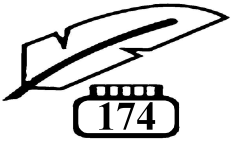

जो पा लेते
स्वयं को
वे ही
शिव को भी.....।

❁

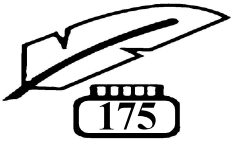

यदि नवनीत है नारी
तो
अग्नि है पुरुष

जो होगा संयोग
नवनीत-अग्नि का
तो पिघलेगा ही.....
और जलेगी ज्वाला ही....।

❁

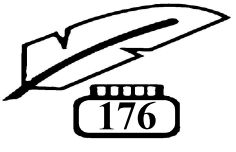

महत्त्वहीन हैं
बिना सुगन्ध के
फूल
और
बिना चारित्र के
प्राणी.....।

❁

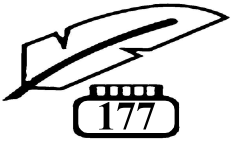

यदि होती सुख-शान्ति
विषय-भोगों औ कामनाओं में
तो....
क्यों लेते योगी
योग की शरण....?

❁

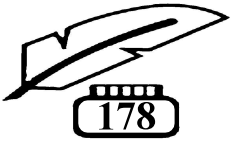

जो उतर गया
निज में
वो तर गया
भव से....।

❁

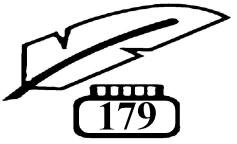

नहीं भटकाती
श्री
और न
श्रीमती

भटकाती तो केवल
अज्ञानी मति
जो स्वयं को भूल
पीछे हो लेती
श्री के.....
और
श्रीमतियों के भी....।

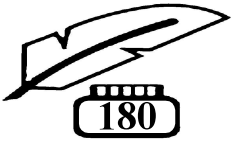

पुण्य कमाने के लिए
किया गया दान
दान नहीं.....
है वह तो
व्यापार

पैसे के बदले गेहूँ
दान के बदले पुण्य....

पर
वांछा के बिना
दान किया नहीं
कि....
पुण्य मिला नहीं.....।

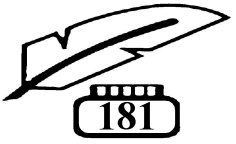

शान्ति
जोड़ने में नहीं
छोड़ने में;

जो जितना
जोड़ता है
वह उतना
स्व से छूटता है....।

❁

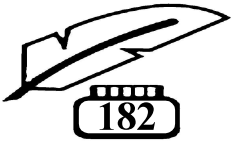

असाता में
भीख भी मिलती नहीं
माँगने पर भी
पर
साता में
बरसते मोती
बिन माँगे....।

❁

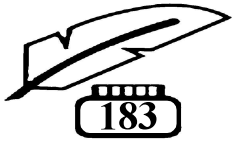

बिना छैनी के
पाषाण से
प्रतिमा नहीं
बस वैसे ही
बिना तप के
आत्मा से
परमात्मा भी नहीं....।

❁

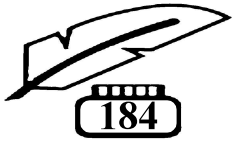

बड़ा अन्तर है
त्यागी बनकर
त्याग करने में
और
त्याग करके
त्यागी बनने में....।

❁

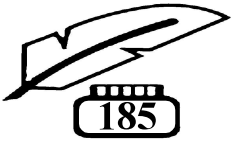

जैसे-
दिखता नहीं घी
दूध में
पर झलकता है वह
वैसे-ही
दिखता नहीं
परमात्मा
प्राणियों में
पर साफ झलकता है
मुनियों
और
साधकों को.....
प्राणियों में
परमात्मा।

❁

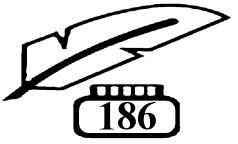

स्वर्ण-पाषाण को
भट्टी में तपाने पर
निकलता है सोना
वैसे-ही
शरीर को
साधना की भट्टी में
झोंकने पर
मिलता है
शिव/मोक्ष.....।

❁

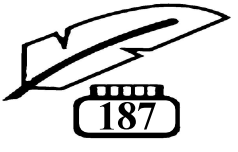

निहारते हैं
प्राणी
आँखों से
और
योगी
आगम से.....।

❁

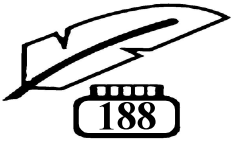

सबके साथ रहना
पर
मत छोड़ देना
स्वयं का साथ.....।

❁

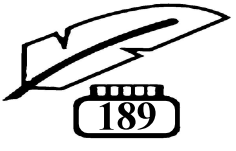

प्राणी की पहचान
होती नहीं
वर्ण से....
बल्कि होती है
वाणी से
पर
मत बनने देना
वाणी को
बाण
बल्कि बनाना उसे
वीणा।

❁

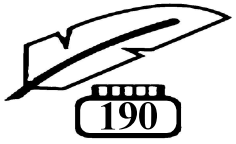

आँखें बन्द हो जाएँ
तो
कोई बात नहीं.....,
पर
मत होने देना
बन्द.....
विवेक के नेत्र....
मेरे मित्र!

❁

तत्त्व
समझ आ जाएगा
जिस दिन
उस दिन
सत्य भी
अपने-आप
मिल जाएगा....।

❁

सत्य के संस्कार
पड़ जाते
जिसके जीवन में...
नहीं हिला पाती
कोई भी आँधी
उसे
फिर....।

❁

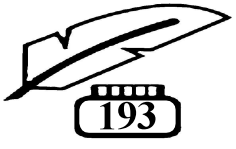

नहीं जानता
जो शिव को
रोता वही
शव के लिए
सब के लिए

जो जानता शिव को
करता संस्कार
वह
स्वयं के
और नहीं विचलित होता
शव से.....।

❁

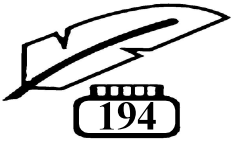

जब
जल जाते
सारे कर्म...
तो सामने आ जाता
शिवत्व
और शिव भी।

❁

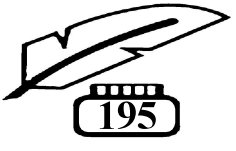

परीक्षा होती
कसौटी पर कसने से
सोने की....,
साथ रहने पर
मनुष्य की....।

❁

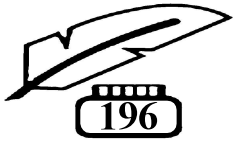

वस्त्र धवल
तन आकर्षक
चरण सुन्दर
पर आचरण
असुन्दर
कुटिल
अनिर्मल

वह
भक्त नहीं
बल्कि
बगुला-भगत.....।

❁

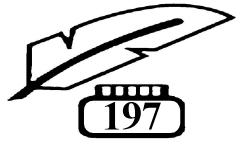

मानव की
मूँछ और पूछ
दोनों बनते
दुर्गति के कारण.....

इसलिए सँभालकर रखो
इन्हें.....।

❁

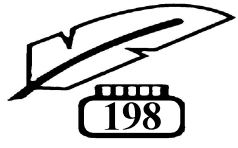

जानते हैं झुकना
गुणों से भरे
गुणी.....।

❁

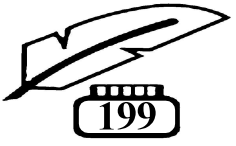

मत मारो पग
पद के मान में आकर
क्योंकि
पता नहीं कब चला जाए पद...

पर
पग मारने का बन्ध
रह जाता बँधा
लम्बे समय तक.....
कभी-कभी जन्म-जन्मांतर तक...।

❁

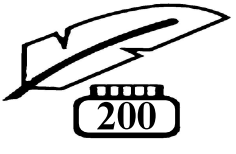

मान
बना देता
मानव को
दानव...।

❁

परिणाम निर्मल
तो लाठी
सहारा,

पर यदि खो दें पवित्रता
तो चोट कर देती वह
सर पर....।

❁

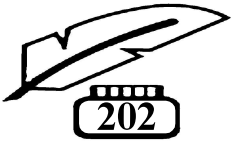

भुज-बल
वह नहीं
जो
मंथन करे
समुद्र का

भुज-बल वह
जो मथे
कषायों को.....।

❁

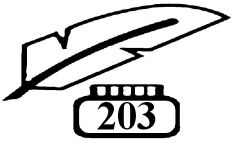

हे मुमुक्षु !
नष्ट करना है यदि तुझे
कर्मों को.....
तो
नष्ट कर
अपनी कषायों को....।

❁

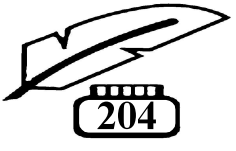

सब खो देते विवेक
तूफान और आवेग में,

विरले होते वे
जो रख पाते
विवेक
वेग और आवेग में भी...।

❁

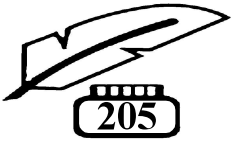

धन-धरा
दारा-देह
पुत्र-मित्र
ज्ञानी के नेत्र में
सब
निज से भिन्न,
पर
हों जब
राग-रंग-रंजित
बहिर-भाव में लिप्त
तब रागी माने-
पर को निज
निज को पर
यही तो
अनादि की मूढ़ता
औ
अनात्म-दृष्टि।

❁

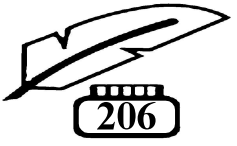

लख-लख
पर के नयनों को
नयन मुड़ गए
पर
नहीं मिटी
पर-नयन निहारने की आदत,
परिणाम:
मृगनयनियों के नयनों ने
नष्ट कर दिये, अहो!
ब्रह्म-नेत्र

ब्रह्मा होकर भी
नहीं बचा सके
ब्रह्म-नेत्र

क्यों, क्या कभी छोड़ोगे
पर-नयन निहारना..... ?

अहो!
कैसा समय
चल रहा है
पर के पीछे
स्व को
पीछे कर रहा

पर तो स्व पुरुषार्थ में
है लीन
निज पुरुष के लिए

पर,
पर को देख-देख
स्व पुरुष को
है भूल रहा
अहो! कैसा समय
चल रहा?
क्या दें दोष समय को ?
या-फिर स्व की समझ को ?

अहो चैतन्य!
न कर चिन्ता
नाना चिंतकों की,

स्व चित्त / चिन्तवन को
स्वस्थ रख
-यही है साधना मोक्षमार्ग की,

पर का चित्त व चिन्तन
नहीं है कारण
तेरे बन्ध व मोक्ष का,

अणु-अणु स्वाधीन है
यह देशना है जिनेश्वर की,

न गुरु के आधीन है
परिणति शिष्य की,
न शिष्य के आधीन है
परिणति गुरुवर की,

पर-कर्त्तापन का भ्रम निकाल
यदि है इच्छा ध्रुवधाम पाने की ।

❁

भो चैतन्य!
चित्त को
तत् में
लगा
क्योंकि अतत् में
तत् मिलता नहीं,
औ अज्ञ प्राणी
तत् में
तत् देखता नहीं,

स्याद्वादी
ज्ञान में देखता
तत् को
तन्मयी भाव से,
अतत् को भी देखता
अतन्मयी भाव से,

तत्-अतत् का
भेदज्ञान ही तो
भेदविज्ञान ।

❁

पर की उपेक्षा है
परम साधना
साध्य की सिद्धि के लिए
स्वात्म की प्राप्ति के लिए

एक साध्य
एक लक्ष्य
एक उपयोग
शेष-अशेष अन्य सब
भिन्न हैं
अनन्य से

जो नहीं करता उपेक्षा
निज लक्ष्य से अन्य की
साध्य ही कर देता
उसमें फिर उपेक्षा
इसीलिए मेरे मित्र!
करो पर की उपेक्षा
और बढ़ो
मुक्ति की राह पर.....।

❁

चित्त प्रसन्न तब होगा
जब होगा अपेक्षाओं का अन्त
पर
मन रोता
जब एक के बाद एक
अपेक्षाएँ
इठलाती चली आतीं,
इसीलिए तो
आत्माराधक/ आत्म-साधक
रहता
पर की अपेक्षाओं की
उपेक्षा करके
क्योंकि
पर की उपेक्षा ही तो
'स्व' में स्थिर कराती.....
और तब बनता
अनुभव का विषय
सहज आनन्द
जो होता अवाच्य
मूक माटी के स्वाद से भी।

❁

उपेक्षा के अभाव में ही
जीव का
चल रहा है भवभ्रमण

कर लेता
विषय-कषाय से उपेक्षा
तो ठहर जाता
कर्मास्रव और बंध
आस्रव-बंध के
बन्द होने पर
प्राप्त करता अनंतसुख/मोक्ष।

❁

ओ! मत कर
मत कर
घाव
जीवों के भावों में,

देह का घाव तो भर सकता है
पर नहीं भरता
भावों का घाव,
चाहे कोई शत्रु हो
या हो मित्र
सबके प्रति करो
एक-जैसा भाव
एक-जैसी वृत्ति,
यदि तुम ऐसा कर पाए
मेरे मीत!
तो न दिखेगा शत्रु
और न शत्रुता
और न रहेगा राग
और न द्वेष
किसी के प्रति भी.....।

❁

अरे ! ओ!
आशा-गर्त विशाल है
समुद्र से भी गहरा
व्योम से भी चौड़ा
धरती से भी लम्बा

आशा-गर्त विकराल है
सम्पूर्ण लोक का वैभव तो
अणु-मात्र है
पर एक पुरुष की आकांक्षाएँ
समन्दर है
कितना ही तू आकांक्षाओं को भर
पर वे और जलती जाएँगी
क्योंकि जन्म की सुन्दरता तो
लंबी है न
इसीलिए तो
शान्ति
आकांक्षाओं में नहीं
शान्ति तो
इच्छाओं के निरोध में
बस
इच्छाओं के निरोध में।

❁

विश्व हो आनन्दमय,
न हो क्लेश-खेद
रोग-शोक, भय-द्वेष
किसी के,

नष्ट हों
विकारी भाव/अशुभ भाव
जगे
ब्रह्म-भाव/ परम भाव
भव से पार ले जाने वाला भाव
निज स्वभाव

और जयनाद हो सब ओर
अहिंसा धर्म का
आत्मधर्म का
परमधर्म का
सत्यधर्म का
अरहंत कर्म का.....।

❁

भेद भेद में विवाद/ विसंवाद
न सुख, न शान्ति
वहाँ तो खड़ी रहती प्रतिपल
ईर्ष्या औ मायाचारी
भय औ निराशा
लिप्सा औ लालसा,
तब बताओ –
कैसे हो दर्शन अभेद का
आनन्दकंद-ज्ञानघन परमानन्द का
निज समरसी भाव का
सहज सुख शान्ति का
निज-गुण-दर्शायक भाव का?

इसलिए,
ओ मेरे मित्र!
भेद को भूल
दृष्टि रख अभेद पर
स्व-पुरुषार्थ पर.....।

❁

स्व सुख पर
लक्ष्य है जिसका
उसे नहीं दिखता
कौन, कैसा, किसका ?
अज्ञप्राणी
अध्यात्म की चर्चा तो करते
पर नहीं चर्या में
किंचित् भी धरते,
चर्चा बोध का कारण तो है
चर्चा शोध का कारण नहीं है,
आत्मशोध बोध नहीं।

आत्मशोध तो बोधि से होगा
और तब होगी आत्मसिद्धि भी
पर यदि रमोगे आत्मप्रसिद्धि में
आकांक्षा-लोक में
लोक की आकांक्षा में
तो क्या कभी पा पाओगे
आत्मसिद्धि?
इसलिए बचो
लोक की सिद्धियों से
लोक की प्रसिद्धियों से
लोक की आकांक्षाओं से....।

❁

शान्त, एकान्त, निर्जन
वन-उपवन
नदी-उद्यान
भवन-श्मसान
जो निज में शान्त
उनके लिए ये-सब
साधना-स्थान,
नहीं अन्तरंग में उपशम भाव जिनके
उनके लिए ये ही थल
बन्ध-स्थान
कषाय-खान
वासना-निधान

न दो दोष
भूमि को / भूपति को

देखो-चैतन्य भूमि की
विशुद्धि-अशुद्धि
वही तो सत्यार्थ दृष्टि से
कारण
भोग-शोक का
स्वर्ग-नरक का
बन्ध व मोक्ष का.....।

❁

वासना की पूर्ति
नहीं की जा सकती
कभी भी
साधना से,
जिसमें पहले 'वास'
उसकी पूर्ति कैसे हो सकती
साधना से?

पर का सम्पर्क
भरता 'वास' (दुर्गन्ध)
'स्व' का सम्पर्क
गंध बिखेरता/सुगंध बिखेरता

चलो छोड़ो वास-वासना
'स्व' का सम्पर्क करें
बिखेरें गंध-सुगंध
सब ओर बहे
रत्नत्रय का गंधित समीर.....।

❁

नहीं हो सकती हिंसा
आत्मविकास का साधन
कभी भी,

पर का घात करके
अपहरण तो किया जा सकता है
धन-धरती का
पर
नहीं अनुभव में आ सकता
शान्ति-सुख-आनन्द

क्या हिंसक को नहीं दिखता
पुण्य पाप का फल?
जितना श्रम
पर की हिंसा में किया उसने
उतना श्रम

अहिंसा में यदि करता
तो स्वत: प्राप्त हो जाता
धन-वैभव
फिर व्यर्थ नहीं गिरते
अनेक माताओं के आँसू।
क्या उसने विचार किया
जिन्हें वह मार रहा है
वे भी किसी माँ की सन्तान हैं?

नहीं लेके आए आप पुण्य,
इसीलिए ही तो धन-धरती से हीन हो
भौतिक सुख-शान्ति से वंचित हो

कर लो पुण्य
छोड़ो हिंसा पाप
यदि हो तुम भारत माँ की सन्तान...।

जयवन्त रहे भारत भूमि
पुण्यभूमि, तीर्थभूमि।

साम्यभाव जिसका भाव
सरलता जिसकी चर्या
निस्पृह वृत्ति
अहिंसा
करुणामय जीवन
जीते हैं
भवनाशक वीतरागी
निर्ग्रन्थ तपोधन

भारत भू
इन्हीं श्रमणों से
कहलाती है
पुण्यभूमि तीर्थभूमि

भारत भूमि जयवन्त रहे.....।

❁

भो प्रज्ञ!
'पर' चिन्ता
स्व-चित्त को
भ्रान्त करती है,
चिन्ता से होता है
ज्ञान का घात
चिन्ता से नष्ट होती है -
स्व-बुद्धि-विवेक
चिन्ता से क्षीण होता है -
शरीर, बल, आयु
चिन्ता जनमाती -
रोग, शोक, आकुलता
चिन्ता से कर जाती पलायन-
खुशी / आनन्द की अनुभूति।
भवन लगने लगता शमशान
चिन्तातुर के लिए।
प्रतिक्षण, प्रतिपल
होता है प्रसन्न मुखमण्डल
पूर्ण-चन्द्र-जैसा
चिन्ता-शून्य पुरुष का ।

❁

अहो हंसात्मा!
तू है परमात्मा
तेरे अन्दर वही है
जो है भगवत्-आत्मा में ।

पर-कर्त्तापन से शून्य
निज-स्वभाव में लीन
ध्रुवधाम चैतन्य
केवल चैतन्य
इसलिए तो तू
परमात्मा/ परम-आत्मा
जिसके ऊपर नहीं कोई आत्मा
ऐसा परमात्मा।

अहो हंसात्मा!
कर स्थिर
निज चित्त को,

यदि नहीं किया स्थिर
चित्त को
तो हो जायेगा पतन
चारित्र का,
चारित्र-पतित
नहीं उठ पाता फिर कभी
निज स्थान पर

इसीलिए तो
जीवन से बड़ा होता चारित्र
चारित्र रहता तो जीवन रहता
चारित्र बढ़ता तो जीवन पुजता
पूजा जाता.....।

चित्त ही मित्र चित्त ही शत्रु
चित्त पवित्र है तो
मित्र है
कषाय/ विभावों से दूषित है
तो शत्रु।

पवित्र चित्तवान का
सम्पूर्ण विश्व में
प्रत्येक पुरुष
मित्र।

चित्तातीत/ परमात्मा का
न कोई शत्रु
और न मित्र।

अहो प्रज्ञ!
चित्त शान्त है तो
विश्व में शान्ति है।

लोकाकाश
कभी अशान्त नहीं हुआ।
लोक में रहने वालों के ही
चित्त
होते अशान्त,
पर लोकव्यवहार में
लोग कहते
लोक को अशान्त।
उपचार की भाषा ही
होती है ऐसी।

लोक-लोक स्वतंत्र है।

अहो मेरे मित्र!
चित्त
ऐसा कार्य करने को करता प्रेरित
जिससे
आप हो सको अन्तरंग में खुश
मायाचारी-रहित,

तेरी प्रसन्नता
जिससे जीवित रहे,
जिसके उपरान्त
पुनः
तुझे
मुझे मनाना न पड़े,

तू मलिन हुआ तो
मेरा सब कार्य मलिन हुआ
अशुभ कृत्य से
बता, भला
कौन मलिन नहीं होता?

❁

नीति हो यदि सु
तो वह है सुखकारी यशकारी

जो नीति होती है
धर्म से युक्त
वही कहलाती सुनीति
साधुपुरुषों की नीति,

यदि लग जाए 'कु'
जिस नीति में
हो जाती कुटिल नीति
कुमरण की कारण
मायाचारी से दूषित
धर्म और यश की नाशक
नरक/पशु पथ-प्रकाशक.....।

❁

तत्त्वज्ञान पर प्रवचन करना
या-फिर तत्त्वोपदेश करना
बहुत सरल है
पर
तत्त्वनिर्णय कर
तत्त्वदृष्टि प्राप्त करना
और फिर
तत्त्व-स्वभाव में लीन होकर
तत्त्व-रमण करना
दीर्घ पुरुषार्थ-साध्य है,
जो तत्त्वलीन होने के लिए
तत्त्वलीन हो लेता
पुरुषार्थ वही सिद्धत्व साध लेता
स्वार्थ पूरा कर लेता
और पा जाता
परम-गुरु-पद।

❁

अहो प्रज्ञ!
ब्रह्म में लीन होना है तो
निज ब्रह्मचर्य की रक्षा कर,
ब्रह्मचर्य की रक्षा के अभाव में
ब्रह्मलीनता गगन-कुसुमवत् है।

वे ही हैं त्यागी वे ही वैरागी
जो ब्रह्मचर्य के हैं अनुरागी।

जहाँ ब्रह्मचर्य है
वहीं ब्रह्म-बोध है,
ब्रह्म-बोध जहाँ है
वहीं आत्मशोध है।

जो भी श्रेष्ठ हुए हैं
वे सब ब्रह्मचर्य के बल पर।

तन बल/वचन बल/मन बल
तीनों की हानि का कारण है
अब्रह्मचर्य।
त्रिलोकपति बनाता है
ब्रह्मचर्य ।

❁

भो हंसात्मन्! संसरण में
संचरण में भी
शान्ति नहीं
वहाँ तो मात्र अशान्ति है ताप है,
पर मेरे मित्र!
ताप के स्थान जहाँ
वहीं है संसरण, परिभ्रमण, संचरण,
जन्म-जरा-मरण का संताप।

आत्मशान्ति चाहिए तो
संचरण वारिए
परिभ्रमण तजिए
और फिर लीन हो जाइए
रत्नत्रय की साधना से
आत्माराधना में।

तत्त्वज्ञान है भूतार्थ दृष्टि
फिर करता
विकसित कराता
स्व-पर का भेद-विवेक
और तब
मानने लगता यह जीव
पर को पर, निज को निज।

यही तो है बोध
प्रज्ञा की निर्मलता
दर्शन की विशुद्धि
और
चारित्र की पवित्रता को
प्रकटानेवाला तत्त्वज्ञान

जीवन के उतार-चढ़ाव में
सम-भाव रखवाने वाला
उपसर्गों में भी
पीड़ा को
ज्ञायकभाव से
वेदन करानेवाला है
तत्त्वज्ञान ।

समय
साधन
साधना
तीनों का संयोग
साध्य सिद्धि का बनाता
प्रबल योग
तीनों के
या तीनों में से किसी के भी
अभाव में
नहीं प्राप्त होता
साध्य
कभी भी.....।

❁

बन्ध औ बन्ध के कारण
दोनों ही हेय,

कषाय के वश हुआ जीव
स्व से दूर होता
और स्वयं देता
कर्मों को आमंत्रण.....

मेरे मीत!
बिना-बुलाए कर्म कभी आते नहीं
और
आने पर
फल दिए बिना
जाते नहीं
पर
तप के तेज को
कर्म कभी सह पाते नहीं.....।

❁

अहो प्रज्ञ!
विश्वास ही प्राण है,
प्राण जाने पर भी विश्वास न जाने पाए,

विश्वास ही पहला चरण है
मोक्षमार्ग का
और इसीलिए तो
कुंदकुंद स्वामी ने कहा -
दंसणभट्टा भट्टा.....
दंसण से होते जो भ्रष्ट
विश्वास जो डिगाते
वे ही तो होते
पूरी तरह पथ-भ्रष्ट
और फिर मुश्किल हो जाती
मुक्ति की राह
उनके लिए.....

इसीलिए मेरे मित्र!
प्राण जाए
पर विश्वास न जाने पाए ।

अहो हंसात्मन्!
निज ध्रुवधाम
भगवत्-स्वरूप
आत्मदेव को जान
उसे ही मान

अन्य तो अन्य ही हैं,
अन्य कभी अनन्य होते नहीं
अनन्य भी अन्य होते नहीं

निज ज्ञायकभाव वाला
मात्र तू है
और है तू तो
ज्ञान-दर्शन-स्वभावी।

भो प्रज्ञ!
साहस चाहिए
स्व के परिणामों को
परभावों से पृथक् रखने के लिए,
साहस चाहिए
निज भावों को
निज स्वभाव में
स्थिर रखने के लिए,
विशुद्ध भावों को रखने के लिए
साहस चाहिए.....।

अहिंसा
परमधर्म है
विश्व में,

वही शिव है
वही है सुन्दर
वही सत्य है
वही है परमब्रह्म

अरे ओ!
तुम उसे ही ईश्वर जानो
उसे ही मानो
उससे ही तुम बन पाओगे
तीर्थंकर ।

जीवित को
मरण से वरण कराने वाली
विश्व में कोई है एक महाशक्ति,
उसका नाम है चिन्ता,

चिन्ता से होते हैं
महान अनर्थ,

ज्ञानी को भी
ज्ञानहीन कर देती है
चिन्ता.....।

बड़े.बड़े पण्डित
स्व-पाण्डित्यपने से रिक्त
सो गए
चिन्ता की चिता पर
स्व-विवेक खो गए,

पोथी का बोध
क्षणमात्र में विलीन हो गया
चित्त ने
प्रज्ञा पर
साम्राज्य जमा लिया ।

भो श्रेष्ठ शक्तिमान!
शक्ति तेरी
काम की दिख रही है,
पर
यह मित्र रहती तभी तक,
जब-तक
चिंता ने तुझे देखा नहीं,
जिस क्षण
चिंता तेरा वरण कर लेगी
बस, उसी क्षण से तू
बल-हीन होने लगेगा
गस्थ खाकर गिरने लगेगा।

प्रज्ञा की निर्मलता,
भावों की विशुद्धता
चित्त की पवित्रता
तभी तक है सुरक्षित
जब तक चिंता है तुमसे दूर
और नहीं भ्रष्ट की है बुद्धि तेरी
चिन्ता ने.....।

❁

भो मनीषी!
रोग शोक व्याधि पर
क्यों करते हो विकल्प?

विकल्पों की ही देन है
रोग/शोक,

तन रोगी होने के पूर्व
मन रोगी हो जाता है,

मन के रोग को जानो
वह जान लिया तो
तन रोग
अपने-आप
नश जाएगा.....।

❁

मन के रोग हरने का
चिन्ता से मुक्ति का
एक ही महामन्त्र
'देखो, जानो, जाने-दो',

परद्रव्यों के परिणमन में
अन्य की नहीं किंचित् भी कोई भूमिका
क्योंकि
प्रत्येक द्रव्य का परिणमन
होता स्वतंत्र
नहीं कर पाता
एक द्रव्य दूसरे का कुछ भी.....।

❁

भो आत्मन्!
निज भावों पर कर विश्वास
क्योंकि निज भावों से ही संसार
और निज भावों से ही मोक्ष,

पर-भाव तो पर ही हैं
नहीं हो सकते वे निज कभी भी,

जिसे नहीं विश्वास
निज पर/निज भावों पर
भला बताओ वह परभावों पर
कैसे कर पाएगा विश्वास?

इसीलिए मेरे भाई!
निज परिणामों को ही सँभालो,
निज भाव सँभले नहीं
कि श्रेष्ठ साधक
आराधक बने नहीं.....।

❁

मत करो विकल्प
पर संकल्पों का
क्योंकि
पर तो पर ही है
उसके परिणाम भी हैं पर,

द्रव्य-परमाणु हो
या हो भाव-परमाणु
अणु-अणु स्वतंत्र है

पर के परिणामों का कर्त्ता
नहीं हो सकता परमात्मा भी
फिर कैसे हो सकते तुम
भोले प्राणी! अन्य के कर्त्ता?

इसीलिए तो कहा गया-
निज को ध्याओ
मुक्ति को पाओ.....।

❁

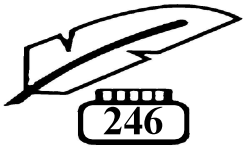

अहो प्रज्ञ!
मत करो ऐसा शौक
जो शोक में परिवर्तित हो जाए,

यदि चाहते हो कुछ करना
तो करो कुछ ऐसा
जो ले जाये
दु:ख शोक ताप क्रन्दन
वध परिदेवन से परे ।

❁

निर्ग्रन्थ मार्ग ही शिवमार्ग
शेष सब उन्मार्ग,
नहीं बनते जिनराज
उन्मार्ग से
क्योंकि
उन्मार्ग तो उन्मत्त बनाते,

अरहंत भगवंत ने कहा
आचार्यों ने उपदेशा-
निर्ग्रन्थ मार्ग ही सन्मार्ग

बोलो-
किस पर चलोगे?
उन्मार्ग पर
या कि सन्मार्ग पर?
बोलो-
किस पर चलोगे ?

❁

अरे ओ मुमुक्षु!
अहिंसा ही धर्म
अहिंसा ही धर्म
और अहिंसा ही
मंगलोत्तम शरणभूत,

साधक भी
जिसका वरण करते
और जिस पर नित्य चलते
और करते अपनी हर क्रिया अहिंसामय
इसीलिए नमन है
ऐसे उत्कृष्ट अहिंसा धर्म को
क्योंकि
अहिंसा करती न-केवल
पर की रक्षा
वह तो करती अपनी भी रक्षा,
अहिंसा अपनाओ
रक्षक बनो
रक्षा करो अपनी भी
पर की भी.....।

❁

पतित को पावन जो कर देता
संसार के गर्त से निकाल
उत्कृष्ट स्थान पर जो रख देता
और दृष्टि को सम्यक्
जो बना देता है,
वही कहलाता है
भूतार्थ समीचीन धर्म,
अन्य नहीं भूतार्थ
अन्यथा भी नहीं भूतार्थ .....।

भो ज्ञानी!
परमतत्त्व है सत्य
ध्रुव अखण्ड अविनाशी
चिद्पिण्ड चैतन्य धर्मस्वरूपी
निस्तरंग नीरव
परम विकसित
सहज-स्वरूपी
अमल
केवल ध्रुवधाम-स्वरूपी
निज दृग से वही केवल नीरव
निजानन्द स्वरूपी।

प्रमाण
पुरुष नहीं,
प्रमाण तो बस प्रमाण,
वह करता
पुरुष की सिद्धि
अपुरुष की असिद्धि,

पुरुष का यश नहीं,
प्रमाण का भी यश नहीं
पर
प्रामाणिक पुरुष के
आगे भी यश पीछे भी यश
इसीलिए प्रामाणिक पुरुष यशवान्
यशवान् ज्ञानवान्
क्योंकि
यशवान सिद्धि करता
प्रमाण से
ज्ञानी की
और इसीलिए उसका ज्ञान
सम्यग्ज्ञान
और सम्यग्ज्ञानी पुरुष
प्रामाणिक पुरुष
इसके अलावा प्रामाणिक
अन्य नहीं
अन्यथा नहीं.....

और इसलिए तो
प्रामाणिक होता-
सरल सहज सत्यार्थवादी

लोक में लोग प्रमाण के लिए
पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकते
मति-भ्रम के साथ मिथ्या ग्रन्थों में
ग्रन्थियों में खोजते निर्ग्रन्थता,

प्रभो! निर्ग्रन्थता आपके बाहर भी
भीतर भी
और इसीलिए आपके वचन
प्रामाणिक वचन
और कहे जाते वे
श्रुत वचन
और बन गए वे प्रमाण
ज्ञानी पथिकों के.....
चलो, हम भी कुछ कदम बढ़ाएँ
प्रामाणिक बनने की ओर।

भो प्रज्ञ!
मति को कर तू सन्मति
मत कर तू कुमति
क्योंकि
कुमति परिणाम
दिलाता है कुगति,
पर सन्मति से तो मिलती सुगति,
बताओ, कहाँ चलें-
कुगति की ओर
या-फिर सुगति की ओर.....?
बताओ, कहाँ चलें.....?

❁

इच्छा है लांछन मोह की
जहाँ मोह
वहाँ इच्छा है,
जहाँ इच्छा
वहाँ मोह,
जहाँ इच्छा
वहाँ क्लेश भी,
क्योंकि इच्छाएँ हैं अनन्त
समुद्र से भी अधिक बढ़कर समुद्र
गहरी भी
अनन्त भी
और इसलिए इच्छा,
क्लेश, मोह
संसार का कारण भी
बन्ध भी
बन्ध के कारण भी ।

❁

वीत-मोह के
इच्छा
नहीं
और फिर
जब इच्छा नहीं
तो फिर क्लेश भी नहीं
राग भी नहीं
पर से कोई अपेक्षा भी नहीं,

पर से निरीह भाव है जहाँ
बन्ध का अभाव है वहाँ.....।

❁

अहो,
अहो, अहो!
धन्यदशा
मुनिवर की

तृण मात्र भी नहीं रखते
अपने पास
परिग्रह-रूप परवस्तु,
और जो
निज वस्तु को क्षण-मात्र भी
दूर नहीं करते निज से,
पर इसके साथ-ही-साथ
परवस्तु को स्वीकारते नहीं,
ऐसे मात्र परिग्रहधारी
तिन मुनीश्वर को है
ढोक हमारी।

❁

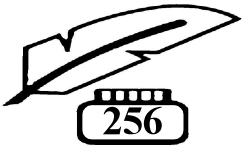

तत्त्वबोध भिन्न है
निजात्म-तत्त्वबोध भिन्न है

मात्र
आगम-कथित तत्त्वबोध
आत्मतत्त्व का निर्णय नहीं

वैराग्य भाव से युक्त बोध ही
सच्चा आत्मबोध,

है आत्मबोध जहाँ
विषयों का भोग वहाँ कहाँ ?

❁

शब्द-वर्ण का ज्ञान
मित्र!
आत्मज्ञान नहीं,
आत्मज्ञान में
वर्ण-शब्द का विकल्प नहीं,
शब्दातीत वर्णातीत
ब्रह्मानन्द का आनन्द ही
ज्ञानानन्द,
वही सत्य-तत्त्व
वही परम-तत्त्व
वही शुद्ध जीव-तत्त्व.....।

भो प्रज्ञ!
कार्य को देखकर
हर्ष/विषाद मत कर,

कार्य तो बस कार्य है,
कार्य के साथ कारण को भी देख,
कारण के अनुकूल ही तो कार्य होता है
शुभ कारण से शुभ कार्य
अशुभ से अशुभ कार्य,
चलो! अशुभ को तजें
शुभ को वरें.....।

भो ज्ञानी!
त्यागी बनने के पूर्व
सबकुछ का त्याग कर देना
बिना त्याग किये
जो त्यागी बन जाते हैं
वे त्यागी बनने के उपरान्त भी
रोते हैं,
शास्त्र कहते हैं-
गृह-त्याग के पूर्व तजो-
विषय-कषाय
और ममत्व भी
तभी होगा सच्चा त्याग
और तभी बन पाओगे
सही मायने में त्यागी भी
नहीं तो त्यागी होकर भी
त्यागी न बन पाओगे.....।

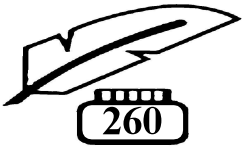

जीवन के सत्य को
जीवन में किसी को भी
बता पाना कठिन है
क्योंकि -
सत्य की सत्यता
स्वयं को ज्ञात होती
अन्य को नहीं,
तो भला बताओ-
कैसे पहुँचे सत्य की बात
अन्य तक ?
इसीलिये तो सत्य होता
केवल अनुभूति का विषय .....।

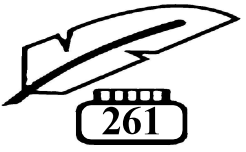

माया के साथ माया में जी लेना
महान नहीं,
महान वे हैं
जो जीते माया-शून्य
मानवता के साथ,
वे आर्जव धर्म में जीते
और तजते
माया को
मायाचार को
जब जरूरत पड़े तो
लोक-प्रियता को भी
क्योंकि
उन्हें तो जीना होता
धर्मप्रिय होकर।

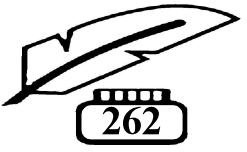

जो शान्ति के लिए
क्रान्ति करते
और नहीं ढूँढ़ते
अपने भीतर की शान्ति
वे अशान्ति भजते
होते दूर सहजता से

स्वयं स्वयं से
अपने भीतर जाओ
शान्ति पाओ
स्व-गंध-मय हो जाओ
सुगंध समीर बहाओ
अपने भीतर जाओ
शान्ति पाओ.....।

अहो हंसात्मा!
धर्म के मर्म को जानो,
क्योंकि
धर्म को जाने बिना
धर्मात्मा होता नहीं,
धर्म-मर्म के अभाव में
क्रिया करना-भर धर्म नहीं
क्रिया तो है साधन मात्र

धर्म हिंसा में नहीं, अहिंसा में
धर्म झूठ में नहीं, सत्य में
धर्म चोरी में नहीं, अचौर्य में
धर्म कुशील में नहीं, ब्रह्मचर्य में
धर्म परिग्रह में नहीं, आकिंचन्य में

क्रिया से कार्य होता,
पर क्रिया-भर धर्म नहीं
क्रियाओं-भर में रमना तो है
अशुद्धि भरना
इसीलिये अपने में रमो
अशुद्धि को तजो .....।

❁

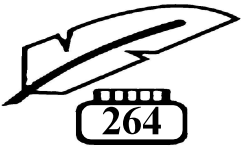

भो प्रज्ञ!
पर पीड़ा को भी पीड़ा जानो,
पर को कष्ट देना
धर्म नहीं,
धर्म तो अहिंसा में है
अहिंसा-मय होने में है,
वही सत्य है
वही शिव है
क्योंकि
अहिंसा-लक्षण वाला ही तो
परम धर्म है
इसीलिए कहा गया-
अहिंसा-लक्षणो धर्मः।

❁

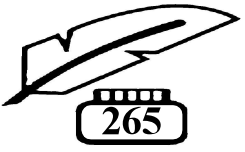

सत्यदृष्टि ही तत्त्वदृष्टि,
प्रत्येक द्रव्य में देखो-
परमभाव को,
प्रत्येक द्रव्य का
अपना निज स्वभाव है
स्वयं में एक
पर से भिन्न
निज से अभिन्न
अनेकान्त से देखो-तो
है भिन्नाभिन्न,

स्व-स्वभाव से
तेरा भी द्रव्य अभिन्न
पर, पर-स्वभाव से भिन्न
यही है द्रव्य का ध्रुव धर्म ।

❁

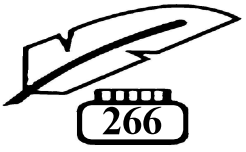

संसार-भ्रमण का मुख्य कारण
राग-द्वेष
बन्ध-भाव

बन्ध का हेतु है
मिथ्यात्व, कषाय, अविरति
प्रमाद आदि का योग,

निजानन्द का आनन्द लेना है तो
त्यागो फिर
संसार के हेतुओं को ।

❁

पात्रदान होता
भवनाशक
अघ-हारक
महान्,
देता अल्पकाल में
बहु-फल।

चतुर्विध दान
क्षितिगत
वट-बीजवत्
समय पाय
देता
छाया महान्

चलो,हम-सब मिल कर करें
पवित्र भावों से
सद्पात्रों को अक्षुण्य दान.....।

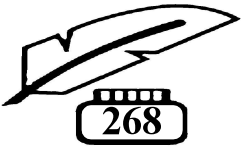

वस्तु
न एक
और न ही अनेक

स्यात्-कार दृष्टि से,
पर गहनता से देखो तो
दिखती एकानेक,
परम भाव से एक
अनन्त धर्मों से अनेक
युगपत् दृष्टि से एकानेक
यही
वीर-जिनशासन का
परम विवेक ।

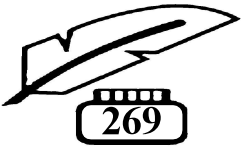

जगत् मित्र ! से
मित्रता हो सकती है/देखी जा सकती है

नहीं चाहिए एक मित्र को
दूसरे मित्र के कृत्य को प्रकट करना,
क्योंकि
कर्म और समय
कभी भी किसी के
मित्र होते नहीं
वे अपना फल
देते ही हैं,

कर्म फलता है
समय बीतता है.....।

❁

अंजुली-रंध्र से जैसे
नीर निकल रहा,
देखते-ही-देखते
वैसे-ही-वैसे
आयुकर्म चुक रहा
एक-एक क्षण
एक-एक दिन
एक-एक सप्ताह
एक-एक माह
और एक वर्ष कर
जीवन ढल रहा
और वह दिन दूर नहीं
जब नहीं जा पाएगी देह
देही के साथ
शरीर तेरा
गमनशील आत्मा के साथ...।

❁

ध्रुवधाम निज भगवान् पर
होता यदि लक्ष्य
तो संसार में संसारी होकर भी
आनंद-पथ पर।
निज भगवान् पर यदि नहीं लक्ष्य
तो क्षण-क्षण / पग-पग
अशांत
दु:खमय .....।

❁

धर्म के अन्वेषक!
धर्म के मर्म को जान।
न रुके पथ, परम्परा, सम्प्रदाय
अरे ओ! आम्नायों में धर्म मान लिया
जबकि ये-सब हैं विभाव भाव।
धर्म तो वह
जो रहता
त्रिकाल।
वही है वस्तु का स्वभाव
वही भूतार्थ-धर्म.....।

❁

जो भाव मेरे नहीं,
उनमें मेरापन का भाव ही तो है
विभाव भाव
अहं भाव।

निज भाव में नहीं आता
अहं भाव।
पर-भावों में
ममत्व ही
जन्माता
अहं भाव.....।

❁

जो दिख रहा
वह देखता नहीं,
जो देखता है
वह दिखता नहीं,
फिर किससे बात करें?
इसीलिए तो तत्त्वज्ञानी लेते
मौन व्रत का आलम्बन.....।

❁

भो प्रज्ञ!
नहीं मान लेना अपना
लोक के लौकिकजनों को

जो दिखते हैं अपने
वे भी हैं मात्र झूठे सपने,

पर के लिए
कोई भी
नहीं जीता
सिवाय तरण-तारण के
जो स्वयं भी तरते
और दूसरों को भी तारते.....।

❁

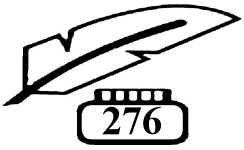

लोग कितना सजाते हैं
देह को
पर नहीं सजाते
देही को।
मुमुक्षु!
तन
सरिता-फेनवत्
विलीन हो जाएगा
सम्पूर्ण दमक मिट जाएगी
मेदनी में
और हो जाएगा
धरती में विलीन
और तब
देही उड़ जाएगा
अनन्त आकाश में,
इसलिए मेरे मित्र!
मत सजाओ देह को
सजाना है तो सजाओ
देही को/ निज आत्मा को
अपने भीतर की आत्मा को.....।

❁

आत्म-सिद्धि-दायक
शिव-सौख्य-प्रदायक
परमसमरसी-भाव-अनुभावक
विश्वबन्धुता-दायक
आत्मज्ञायक
विश्व में केवल एक विद्या
वह तो केवल ध्यान विद्या,
क्योंकि
ध्यान ही तो
भगवान् बनाता
और
ध्यान ही
कर्म नशाता .....।

❁

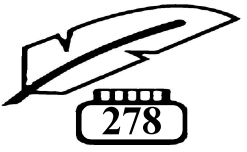

एक आत्मा है विश्व में
शेष सब किरणें हैं
ऐसी बुद्धि जिसकी
वह असत्य,
क्योंकि यह पनपाती
असमानता/ असाम्य
और सबके प्रति भेद-भाव
सच में तो कुबुद्धि;

प्रत्येक आत्मद्रव्य स्वतंत्र
और हर आत्मद्रव्य
दूसरे आत्मद्रव्य जैसा,
इसीलिए होती
सबकी अनुभूति स्वतंत्र
और सभी के
इसीलिए तो कर्म स्वतंत्र
सभी के परिणाम भी होते स्वतंत्र,
सच, सब आत्माएँ एक-जैसी
न कोई सूर्य
और इसकी किरणें.....।

❁

भो ज्ञानी!
स्व-विवेक से विचार कर
पर्याय के अवसान का,
पता नहीं कब वृक्ष-पत्र-वत्
पर्याय का पतन हो जाए

स्व-शरीर में जब-तक स्वात्म-देवता
तब तक तू कर ले लीला।

इन्द्रधनुष
विद्युत्-चमक-वत्
क्षण-मात्र में
देह विलीन हो जाएगी
और उड़ जाएगा देही
तब धरी-की-धरी रह जाएगी
देह
निष्प्रयोजन
और निरर्थक।

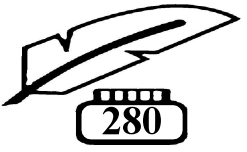

भो प्रज्ञ!
स्व-प्रज्ञा का सम्यक् प्रयोग कर,
प्रज्ञा का सम्यक् प्रयोग ही तो
पुरुष को
परमात्मा बना देता

प्रज्ञा का अशुभ-उपयोग
नारकी बना देता

प्रज्ञा से ही तो,
जीव कर्म बाँधे
और प्रज्ञा से ही बन्ध तोड़े
इसीलिए
इस जगत् में
अन्य को
मत सँभाल
सँभाल पाए तो सँभाल
निज प्रज्ञा को.....।

सत्य की बात करने वाले
और कराने वाले
वसुधा पर अनेक हैं,
पर
सत्य की अनुभूति पाने/लेने वाले
मुश्किल से मिलते एक या दो

सत्य का जीवन ही तो सत्य है
क्योंकि
प्रत्येक द्रव्य
निज द्रव्य/ तत्त्व में
सत्य है
असत्यता तो होती
व्यक्ति की कुदृष्टि में.....।

❁

भो हंसात्मन्!
क्यों तुम अनमने से दिख रहे?
क्या किसी ने दिया तुम्हें कष्ट है?
जरा विचारो-
सच,कष्ट कोई देता नहीं
दे सकता नहीं
कष्ट तो तुम्हारे कर्मोदय हैं,
क्या कष्ट देने वाले को
कष्ट देने की इच्छा आप रखते हो?
मित्र! क्यों परेशान होते हो?
जिन कर्मों ने आपको देखा है
वे कर्म उसे भी देख लेंगे.....।

❁

अहो प्रज्ञ!
मन, वाणी, काय पर
कर पूरा नियंत्रण,
जिसका तीनों योगों
पर होता पूर्ण नियंत्रण,
वही है
सच्चा योगी
भदन्त
कर्मकलंक-नाशक
भव-तारक,
अघ-हारक,
शिव-साधक
प्रभू / विभु / ईश्वर
शक्तिमान्
भविष्य का भगवान् ।

❁

विश्व में
क्लेश का मुख्य कर्त्ता
यदि है कोई
तो वह है मन,
सम्पूर्ण प्रवृत्तियों का अगुआ है मन,
दूषित मन से
वचन भी होते दूषित
और काय चेष्टा भी।
दूषित वृत्ति का अनुगमन कर
जो भी निर्णय लेते हैं
वे अधोगति के ही पात्र होते हैं,
जो अज्ञ
मन के अनुसार
पापकर्म करते
उन प्राणियों के पीछे
दु:ख गमन करते ऐसे,
जैसे श्वान
-गाड़ी के चक्र
बैलों का गमन
अनुगमन करते हैं।

❁

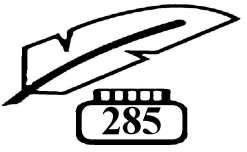

मन-योग
सभी योगों में है प्रधान योग,
जप-तप-ध्यान में
है मन का प्रबल योग,
मन से शुभ-चिंतन
शुभ भावना
शुभ-क्रिया
शुभ चर्या
जो करता है
साधक,
भुक्ति-सुख
मुक्ति-सुख
उभय-सुख पाता वह
मन साधक,
और फिर उसका
करते हैं सब अनुगमन
जैसे पुरुष की छाया करती
पुरुष का अनुगमन.....।

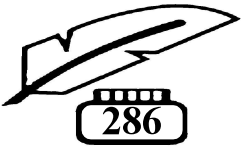

नेह-स्मरण
बैर-भाव-मय चिन्तन -
मुझे मारा मुझे पीटा
मुझे है सताया
मुझे डाँटा
मेरा धन हरण किया
-ऐसा भाव
रहेगा जब-तक,
जब-तक नहीं होती
कषाय
उपशमित।

कषायभाव के
उपशमित होने पर ही
जगता निज के भीतर
मैत्री-भाव
तब हृदय से स्फुटित होता
एक दिव्य नाद
सत्त्वेषु मैत्रीं,
गुणिषु प्रमोदम्.....।

नहीं होता कुछ काम का
शब्द-ज्ञानी-पना
तत्त्व-बोध में
इसीलिए तो
बड़े-बड़े वक्ता
निज को उपदेश नहीं दे पाते
बल्कि वे तो
काम, क्रोध, मान, माया, लोभादि
कषायों की ज्वाला में
निज की आहुति देते देखे जाते
इसीलिए तो शास्त्र कहते -
मत फँसो शब्दजाल में
करो रक्षा निज भावों की,

आत्मशोधन का भाव जहाँ
तत्त्वबोध है वहाँ.....।

❁

निज का बोध ही
भूतार्थ बोध,
जहाँ नहीं आत्मबोध
वहाँ नहीं सम्यक्-बोध,

बोधि की प्राप्ति हो,
समाधि सधे
जिस ज्ञान से
वही है सत्यार्थ/ सम्यक्
तत्त्व-बोध
उसी से मिलेगा
नित्यानन्द-स्रोत ।

❁

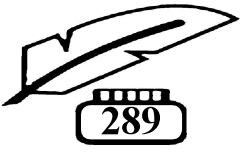

एकत्व
एकत्वभूत है
एकत्व में नहीं है
अनन्यत्व,
निजतत्त्व में रहता है
त्रैकालिक
एकत्व,

एकत्व ही तो है
वस्तु का ध्रुव स्वभाव,
परम भाव में तो दिखता ही है
एकत्व
और वही है ज्ञायक-भाव।

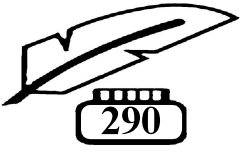

समता है परम साधना
समता है परम अराधना,
समता में है परम समाधि,
समता के अभाव में
क्या कर सकेगा वनवास?
व्यर्थ है कायक्लेश,
उपवास और मौन.....।

जीव
गया मन्दिर-मन्दिर,
देखता रहा मात्र बाहर से
बिम्ब को
पर नहीं देख सका
आत्म बिम्ब / परमात्म बिम्ब,

आत्म बिम्ब/
निज तत्त्व को देख सको
परमात्म को देख सको
तो देखते-देखते
राह चलते-चलते
परमात्मा हो जाओगे
और तब
सार्थक हो जाएगा
मन्दिर जाना.....।

भो प्रज्ञ!
वाणी-संयम
मन-संयम
काय-संयम,
तीनों संयमों का
निर्मल पालन है जहाँ
होता है वहाँ
निर्वाण-सुन्दरी का वरण.....।

दु:ख का भाजक
वही होता,
जो संयोग में
सुख का अन्वेषण करता,
पर
संयोग कभी सुख के साधन नहीं हुए

दु:ख से चाहिए मुक्ति तो
मन-वचन-काय से
त्यागना होगा
संयोगों को.....।

❁

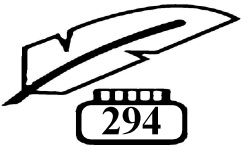

जिसकी नियति है
नष्ट होना
उसे क्या तू बचा पायेगा?
शाश्वत है जो
उसे नष्ट
कौन कर पायगा?

निहार
निज ध्रुवधाम
भगवान्-आत्मा को.....।

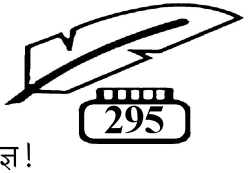

भो प्रज्ञ!
स्व प्रज्ञा में ही कर अवलोकन
जीवन के निषेकों का
और परख
कि तू उनका प्रयोग कितना
सत्य के लिये कर रहा
और कितना असत्य के लिए?
और परिणाम से ले बोध
हो जाए ऐसे तेरा
स्व-बोध
आत्म-शोध.....।

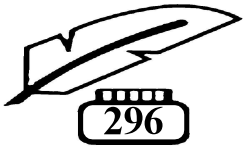

अदु:ख में भाया ज्ञान,
दु:ख आने पर
नष्ट हो जाता है,
इसीलिए आवश्यक है
मुमुक्षु
प्रति-क्षण
आत्मा को
दु:ख से
भावित करता रहे,
ताकि दु:ख आने पर
ज्ञान ज्ञाता को
देर तक
आनन्द देता रहे.....।

❁

सत्यार्थ-साधना
माया-शून्य है,
माया में
सत्यार्थ साधना शून्य है,
भूतार्थ में अभूतार्थ की नास्ति है,
वैसे-ही अभूतार्थ में
भूतार्थ की नास्ति है,
भूतार्थ में
भूतार्थ की अस्ति ,
वैसे-ही अभूतार्थ में
अभूतार्थ की अस्ति
बोलो-
कौन महत्त्वपूर्ण
अस्ति
या नास्ति
या-फिर दोनों
और फिर
अवक्तव्य भी ?

❁

भो प्रज्ञ!
दृष्टि को निर्मल कर

वस्तु निज वस्तुत्त्व गुण में है
पर-गुणभूत हुई नहीं,
और पर-गुण निज गुण हुए नहीं,
परमार्थ तो यही
कहेगा,
पर व्यवहार
निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध खोजेगा
क्योंकि उसके बिना
व्यवहार चलता नहीं
और फिर व्यवहार के बिना भी
परमार्थ मिलता नहीं.....।

❁

भो प्रज्ञ!
श्रेष्ठ बनो
ज्येष्ठ बनो
बनो विवेक से युक्त।

विवेक नहीं तो
न श्रेष्ठ
और न ज्येष्ठ।

विवेक के अभाव में
सभी गुण
दीन-हीन
और लगते शून्य-से.....।

❁

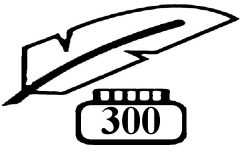

हे भव्य!
बन्ध
कभी भी
परभावों से नहीं होता,
बन्ध तो
पर-भावों में निज भावों की
राग/द्वेष-मय दशा से होता,

मत करो
पर-से
राग-द्वेष
यदि तू बनना चाहता है
निर्बन्ध स्वभावी
परमेश.....।

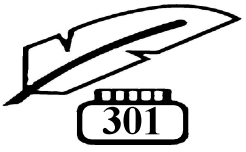

अहो आश्चर्य !
लोक में पुजने वाली
अग्नि
पिटती देखी जाती है,
क्या कारण है?

मित्र !
कुछ नहीं
कुधातु/लोहा
के संयोग से
हुताशन
पीड़ित किया जाता,
स्वतंत्र अग्नि
कभी नहीं पिटती।
देह-लोह के संसर्ग से
संसार में
भगवानात्मा
इंद्रियजन्य हुए दु:ख-सुख का
वेदन करती .....।

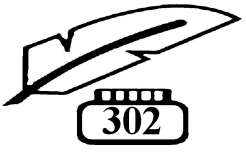

नहीं बनाते किसी को
भगवान् कभी भी.....
भगवान्
परमार्थ दृष्टि से,

पर का कर्त्ता पर
कभी होता नहीं
निज का कर्त्ता बनता नहीं,

निज के भावों की विशुद्धि से
नर बनता है भगवान्
निज की ही कालुष्यता से
होता है अघवान्.....।

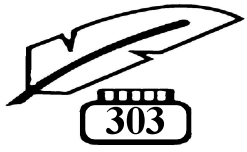

परम धर्म है
अद्वैत-भाव
एकत्व-विभक्त स्व-स्वभाव भाव
जो है लोक में
परम-आनन्द-कन्द
सम-रसी-भाव
सर्व-सुन्दर
चिदानन्द स्वरूप,
पर-भावों से पृथक्
ऐसे-ही निज-भाव से अपृथक्
ओ प्रज्ञ!
उसे
निज-स्थान
जान.....।

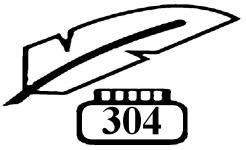

स्व-प्रज्ञा के अहं में
पर अज्ञता का उपयोग
विपरीत मत कर
पर प्रज्ञा की न्यूनता पर ही,
प्रज्ञावानों की प्रज्ञा शासन कर पाती
प्रज्ञावन्तों पर
पर की प्रज्ञा
शासन नहीं कर पाती
भो प्रज्ञ!
प्रज्ञा/पुण्य
सम्यक् प्रयोग कर.....।

❁

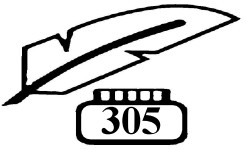

स्व परिणाम ही मित्र
स्व परिणाम ही शत्रु,
अन्य तो
अन्य ही है
वे उपादान-दृष्टि से
न शत्रु न मित्र;
पुण्य-परिणाम मित्र है,
पाप-परिणाम शत्रु,
परिणाम-शून्यता में
न शत्रु न मित्र.....।

❁

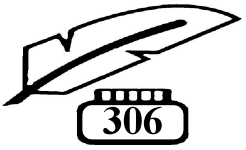

तत्त्वबोध में
जब स्व-चिन्तन का लेश नहीं,
तभी वह होता सम्यक् तत्त्वबोध,

स्व-चिन्तन
स्व-बुद्धि का ज्ञायक है,
तत्त्वबोध
सर्वज्ञवाणी का
दिव्य-उपदेश है,
सर्वज्ञवाणी के अनुकूल
चरण/चिन्तन ही
निर्वाण-पथ का साधन.....।

❁

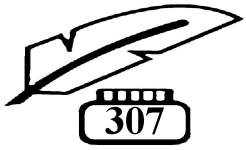

भो प्रज्ञ!
निज ज्ञान को सँभाल
श्रद्धान को सँभाल,

ज्ञान-श्रद्धान जहाँ सँभल गया
चारित्र वहाँ बैठ गया,
औ जहाँ चारित्र सँभल गया
फिर क्या ?
वहाँ तो
निर्वाण-मार्ग
खुल गया।

❁

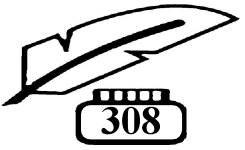

तत्त्व-निर्णय ही है
परम निर्णय
आनन्द-दाता
शिव-सुख प्रदाता
और फिर बनता वह
क्लेश-मुक्ति
का साधन,

करो निर्णय तत्त्व का,
सत्य का,

विचार कर सकता है जीव,
पर वस्तु-व्यवस्था
भला कैसे बदल सकता ?
जीव की भवितव्यता
तो है अलंघ्य.....।

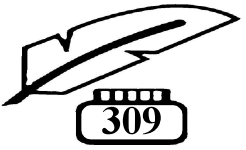

ज्ञाता तो ज्ञाता है
दृष्टा तो दृष्टा है,
ज्ञाता-दृष्टा ही
जीवद्रव्य,

ज्ञाता-दृष्टा
पर का कर्त्ता नहीं
पर का कर्म नहीं
करण नहीं
सम्प्रदान व
अपादान भी नहीं
और फिर पर का
अधिकरण भी नहीं.....।

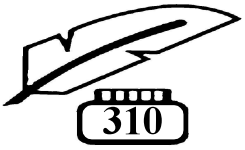

निर्ग्रन्थ दशा
नहीं है क्षेत्रों के राग के लिए
और न
पुद्गल के टुकड़ों के
संग्रह के लिए
यश-अपयश के लिए नहीं,

जिनमुद्रा
तो मात्र है
सहज-ज्ञान-साम्राज्य के लिए,

निज सहज स्वभाव पर
राज्य करना ही तो
निर्ग्रन्थ धर्म है.....।

❁

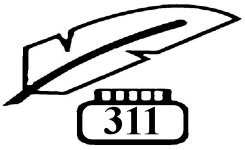

भो प्रज्ञ!
सद्गुण औ'
सद्गुणी हों
तेरे जीवन के सहचर,

सद्गुण / सद्गुणी के नियोग से
जीव बन जाता है
भगवान,

सुगन्ध के नियोग से
मिट्टी भी हो जाती
सुगन्धमय

गुण संसर्ग से ही तो
वह भी
बाँध लेता
और फिर
बन जाता तीर्थंकर.....।

❁

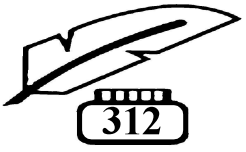

पर की परिणति
उसकी गतिबन्ध की है सहचरी,

जैसी गति होगी भविष्य में
वैसी होगी मति वर्तमान में,

वर्तमान की मति
भविष्य की गति,
अनुमान प्रमाण है

मत जाओ
किसी के पास
पूछने अपनी गति

स्व-मति
को ही पहचान लो
गति का बोध
हो जाएगा.....।

❁

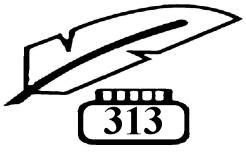

भो प्रज्ञ!
पर-कृत कर्मों का
न तू कर्त्ता
न ही है भोक्ता

पर-परिणति को
परख कर
स्व-परिणाम
क्यों करता
विकृत?

क्या कभी अन्य द्रव्य
अन्य द्रव्य का
उपादान-कर्त्ता हो सकता ?

कण-कण स्वतंत्र है
स्व-उपादान में,
अन्य
अन्य के
उपादान का कर्त्ता होता नहीं
ब्रह्माण्ड में.....।

❁

भो प्रज्ञ!
वर्तमान देख,
और देख भविष्य भी,
भूत क्या था तेरा,
भविष्य क्या होगा,
उभय अवस्था देखकर
सँभाल
वर्तमान को
यदि प्रज्ञावान है तो,
अन्यथा
अन्यथा ही है.....।

❁

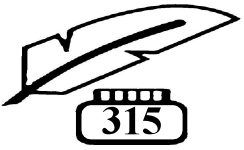

भो ज्ञानी!
तू निज ज्ञान से
निज को
ज्ञान दे,
जो उपदेश पर को देता
उन्हें कभी स्व को भी दे
और फिर पूछ स्वयं से
कि वह उन पर
कितना चल रहा है?
निज की कषाय-लता
कितनी बढ़ रही है
या घट रही है
इसे भी तो देख.....।

❁

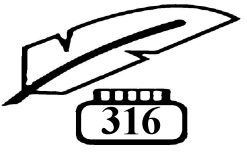

समय
है एक मापदण्ड
समय
कर्त्ता नहीं किसी का,
समय
कर्म भी नहीं किसी का,
समय
करण भी नहीं,

समय ज्ञायक है
तटस्थ है,

जीव-भाव ही कर्त्ता
वही कर्म
और
वही है
करण भी .....।

भो प्रज्ञ!
ईश्वर को
कर्त्ता-हर्त्ता बनाकर
क्यों स्वछन्द हो रहा?
ईश्वर
तुझे दिखता नहीं,
पर तू स्वयं को तो
कितना-कुछ करता देखता है,
तो-फिर क्यों नहीं मानता तू
स्वयं को कर्त्ता और भोक्ता
और जो दिखता नहीं
उसे वैसे कैसे कहता तू कर्त्ता
दृश्यमान तू
स्वयं है,
स्वयं का कर्त्ता

छोड़ पर-कर्त्तापन
निज रूप को निहार
तू ही स्वयं में ज्ञाता-दृष्टा
भगवान् भी .....।

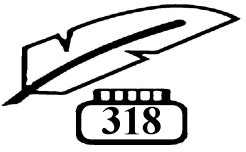

स्व गुण
निज मुख से जो कहे,
सब गुण उसके
तृण-समान,

निज मुख से
स्व-गुण
प्रकट न कर,

करना है तो
निज चर्या से
गुण प्रकट कर,

चर्यावान् के गुणों का
गुणगान करते हैं
लोग
और कहलाते हैं-
गुणवान
इसीलिए गुणवान् कीर्तिवान्।

❁

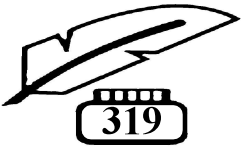

भो प्रज्ञ!
दृष्टि को रख सुरक्षित,

दृष्टि पवित्र है तो,
वस्तु दिखती पवित्र,
दृष्टि अपवित्र तो
वस्तु दिखती अपवित्र,
पर
वस्तु तो है वस्तु ही .....।

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बनना है, तो
सर्वप्रथम
समदर्शी बनो,

समदर्शी बने बिना
सर्वदर्शी बन नहीं सकते
कभी भी,

इसीलिए
निज के अन्दर के
समकित भाव का
अवलोकन करो.....।

भो प्रज्ञ!
स्वात्म-तत्त्व की सिद्धि
की है भावना तो,
प्रसिद्धि से
निज-मुख को
मोड़ लो,
समाज की अखण्डता को
अपनी प्रसिद्धि के स्वार्थ में
खण्ड-खण्ड मत करो,
जैनत्व की रक्षा करो,
स्वार्थों को
कुछ देर के लिए तो
नष्ट करो ।

❁

भावना हो सद्
तो
साधुता स्वयं आ जाएगी
भावनाओं में,

भावनाएँ असद् तो
साधुभेष भी आ जाए
पर
साधुता से शून्य होगा
वह

बोलो -
किसका आराधन करें
सद् का या असद् का?

❁

जब-तक तत्त्वज्ञान है
केवल तत्त्वज्ञान
तब-तक शब्दागम मात्र है,

तत्त्वज्ञान को
सत्य ज्ञान
तभी समझना
जब हो पाओगे शब्दागम से परे
अर्थागम में,

तभी लीन होगा
आत्म-ब्रह्म
भूतार्थ ब्रह्म में

इसीलिए उसे जानो
और उसे ही मानो
दूर वही अन्य से.....।

भो प्रज्ञ!
जान
वस्तुधर्म को,

असमान-जातीय कभी भी
वस्तुधर्म नहीं,

निज
अभिन्न है,
सत्य है
ध्रुव है
अखण्ड है

पर संयोग
पृथक् है
'मैं' मैं मात्र है
अन्य तो अन्य ही है।

पर-वस्तु से भिन्न है
निज ध्रुव-आत्मा,
ज्ञायक
निज ज्ञेय-स्वभावी है आत्मा,
चिद्रूप है
आत्मा,
निज-प्रमाता प्रमेय-स्वभावी
है आत्मा।

❁

मैत्रीभाव है
परम-भाव के पास जाने का भाव,

मैत्री को प्राप्त हुआ
संवेग को प्राप्त होता है,
संवेग से निर्वेग को प्राप्त होकर
वैराग्य
और फिर वैराग्य से
वीतराग भाव ।

❁

आयु क्षीण हो रही,
पर
मन की आशा
और तृष्णा भी
बढ़ रही,

साधना का मार्ग
विषय-आशा-तृष्णा -
आकांक्षा से
शून्य है,

अभिलाषाएँ तो
सत्य-साधना के लिए
बस अभिशाप

भो प्रज्ञ!
चलो, अभिलाषाएँ छोड़ें
सत्य साधना की ओर बढ़ें .....।

❁

साहस
परम शक्ति है,

साहसी ही
मंजिल को प्राप्त कर पाते हैं,
साहस- विहीन
कार्य की पूर्णता से हीन ही
प्राय: रहते हैं,

निज साहस को बढ़ाओ
कर्मफल पाओ.....।

❁

भो प्रज्ञ!
स्व प्रज्ञा से
स्वयं को
क्यों नहीं बोध देते?

निर्दोष बोधि ही तो है
समाधि का साधन,

निज बोधि में
नहीं लगता है
किंचित् भी दोष
और मिलता परम संतोष,

चलो, बोधि की ओर चलें....।

❁

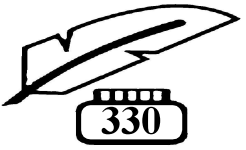

स्वात्म-देव
देह-देवालय में
त्रैकालिक विराजता,

पर
अचेतन बिम्बों को
देखने के लिए तो
नेत्र खोलने ही पड़ते हैं,

पर
देह-देवालय में विराजे
निज देव के लिए
नयनों में नहीं,
निज में
करना होता है
अवलोकन

हे प्रज्ञ!
बोलो-
नयनों में निहारोगे या निज में.... ?

❁

हे प्रज्ञ!
निज का कर आलोचन,

निज आलोचन ही
कराता
निज अवलोकन
आत्मावलोकन
भूतार्थ अवलोकन

स्वरूप होता
पर से भिन्न
इसीलिए तो निज होता
निजत्व से अभिन्न
और यही कहलाता
आत्मावलोकन भी.....।

❁

हे प्रज्ञ!
स्व की आलोचना से
मत हो उदास,

क्योंकि
आलोचना नहीं होती कभी
अभिशाप

वह तो दिग्दर्श कराती
विकास के पथ का

स्व की आलोचना
जो कर सका
निश्चय मानो कि वह
उन्नति के मार्ग चढ़ गया.....।

❁

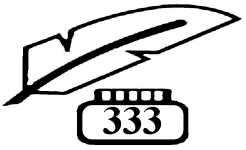

शास्त्र कहते-
निर्ग्रन्थ मुद्रा
विश्वपूज्य मुद्रा;

सुर-असुर
नर-खग
सभी इसे प्रणमते
मन-भीतर से,

और शास्त्र कहते यह भी कि-
भगवत्ता को प्रकटानेवाली
मुद्रा भी यही.....।

❁

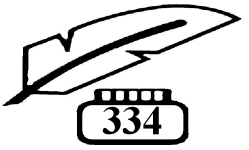

भो प्रज्ञ!
थिर कर निज मन को

क्योंकि
संकल्प-विकल्पों की ज्वाला
राख कर देती प्रायः
प्रज्ञा को
इसीलिए बच तू इनसे

पर का सोच
पर का विचार
सदा होता निज से भिन्न
ले जाता दूर निज से,

इसीलिए पर से हट
यदि चाहता है निज में रमना

निजत्व को पहचान
और हो जा निज-मय.....।

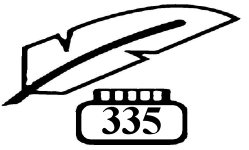

स्वानुभूति है
परमानन्द-दायिनी
स्व-रस-पूर्ण
पर-रस-शून्य
ज्ञायक-स्वभावी

ज्ञाता
ज्ञायक
ज्ञायक ही है,

पर-ज्ञेयों से भिन्न
जो है ज्ञान मात्र
यही है
चिद्रूप स्वभाव
निजानन्द का.....।

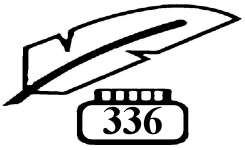

भो प्रज्ञ!
तीर्थवन्दना कर
निज को
तीर्थ बनाने के लिए,

तीर्थ वही भूतार्थ है
जिनके नियोग से
आराधना कर ऐसे कि
भावना जाग्रत हो जाए,
स्व को तीर्थ बनाने की
और तुम तो जाना तीर्थों में
बस केवल
आत्मतीर्थ पाने के लिए
मत जाना तुम तीर्थों में
निर्माल्य खाने के लिए

पर दुर्भाग्य
आजकल तो लोग जाने लगे तीर्थों में
निर्माल्य खाने के लिए।

❁

अरे! कैसी अलौकिक भू
नैनागिरि की
नयनाभिराम,
नैनों में श्रद्धानीर झलकाने वाली
तीर्थों के महातीर्थ
तीर्थंकर पारस प्रभु की नैनागिरि,
जहाँ खिरी देशना
प्रभु की
भव्यों के कल्याण के लिए,

पाँच केवलियों की निर्वाण-भूमि
नैनागिरि,

पंचमगति जाने के लिए
करो सिद्धों का गुण-गान

जाकर
पावन सिद्धशिला पर
रोम-रोम पुलकित होगा
और होगा कण-कण ऊर्जान्वित..
बस, करो सिद्धों का गुण-गान...।

❁

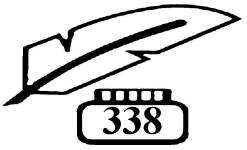

जब-जब होता उत्कर्ष
जीवन में,
तब-तब आते हैं उपसर्ग
जीवन में,

अधीर
विचलित हो रुदन कर
बुलाता असाता को
जीवन में,

धीर
धीरता के साथ सहन कर
भगाता असाता को
और चढ़ता आत्म-मार्ग

भो प्रज्ञ!
बोलो, बुलाओगे असाता को
या-फिर साता को..... ?

❁

सरल है तन का परिचय
लेना और देना भी,
पर
कठिन है
तन-यंत्र में विराजे
चैतन्य का परिचय
क्योंकि मैं दूर चैतन्य से
और हूँ तन-मय

पर जैसे-ही
चैतन्य की ओर बढ़ूँगा
वैसे-ही होगा
चैतन्य का परिचय भी
क्योंकि सरलता के साथ
मेरा कदम आगे बढ़ेगा
और
सरलता होती जहाँ
मुक्तिपथ होता वहाँ

भो प्रज्ञ!
बोलो, किस डगर चलोगे-
तन-नगर या चैतन्य-घर.... ?

❁

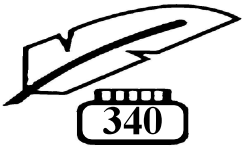

एक मैं : शाश्वत
आत्मा हूँ,
ज्ञान-दर्शन-स्वभावी,

मेरे से पृथक्
जो भी है,
वह सब
भिन्न ही है मुझसे,

संयोग
लक्षण है
स्वभाव नहीं

संयोगों में है
मात्र
हर्ष व विषाद

स्वभाव
न हर्ष और न विषाद.....।

भो प्रज्ञ!
विकल्प अंत:करण के
शान्त हो जाएँ
इन्द्रिय-व्यापार का
विराम हो जाए,
तब दिख जाएगा तुझे
तेरा प्रभु परमब्रह्म

निज ब्रह्म के
अवलोकन करने का
भाव है यदि....
तो कर-
निज मन को शान्त
बस
और बढ़ जा
निज की ओर.....।

संकल्प है
प्राणियों के लिए
बन्ध या
मोक्ष का कारण

शुभ संकल्प है
मोक्ष का कारण
अशुभ है बन्ध का

आज उपलब्ध हैं साधन
उभय संकल्पों के

भो प्रज्ञ!
कर बोध
शुभ को स्वीकार
और त्याग कर अशुभ का.....।

❁

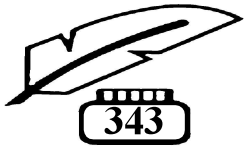

सत्य तत्त्व है
परमार्थभूत
निज चैतन्य,

उससे भिन्न
जो भी
वह-सब
पर-गत तत्त्व

स्व-गत तत्त्व ही
बनता
निर्वाण का परम साधन

अन्य तो बस
अन्य ही
घुमाता रहता जो
अन्य में अन्य-मय रखकर.....।

❁

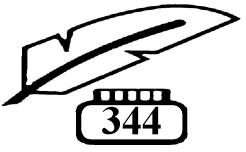

देहधर्म
आत्मधर्म नहीं
आत्मधर्म
देहधर्म नहीं,

भिन्न-भिन्न दो द्रव्य
एक होते नहीं
कभी भी,

इसी से तो
दो द्रव्यों की क्रिया
एक रूप होती नहीं
कभी भी,

चैतन्य द्रव्य में
जड़त्व भाव नहीं
और जड़त्व में
चैतन्यत्व नहीं.....।

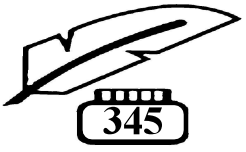

भूतार्थ मार्ग है
रत्नत्रय धर्म,
जो नहीं पर्यायाश्रित
बल्कि वह परिणाम-गामी

व्यवहार
परमार्थ दृष्टि से तो
पर्याय को ही देखता,

भूतार्थ तो
पर्याय से
भूतार्थ मार्ग का
आश्रय-साधन मात्र

अतः मान इसे
परिणाम साध्य का
पूर्ण साधन
और जान इसे वैसे-ही.....।

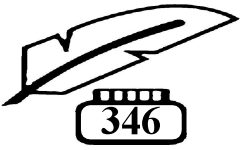

स्व-सुख-सापेक्षता
पर-सुख-निरपेक्षता
बसती है
जिसकी बुद्धि में
वही है
कु-बुद्धि,

सर्व-हित-सापेक्षता
है जिसकी बुद्धि में
वही है
सज्जन की बुद्धि
यानी
सु-बुद्धि.....।